चन्दामामा
मार्च १९७६
1
रु

Photo by: Smt. I. UMA RANI

ELEPHANT RIDE

प्यारे बच्चों
पिन्की का फ़्लेक्स का जूता एक खरगोश
लेकर भाग गया। रास्ते में चारों तरफ़ पत्थर हैं
तुम पिन्की को रास्ता बता कर उसका जूता
ढूढ़ने में उसकी सहायता करो, प्लीज़।
फ़्लेक्स
टैनरी एण्ड फुटवियर कॉर्पोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड
(भारत सरकार का एक प्रतिष्ठान)

प्रधान मंत्री के साथ चन्दामामा

चन्दामामा (अंग्रेज़ी), मंगै तथा वनिता नामक महिलोपयोगी तमिल और तेलुगु पत्रिकाओं में प्रकाशित प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के रंगीन चित्र को जनवरी में उनके मद्रास आगमन पर राजभवन में चन्दामामा के युवा चित्रकार श्री प्रभाकर ने उन्हें समर्पित किया। उपयुक्त चित्र में श्रीमती गांधी के साथ चन्दामामा के प्रकाशक श्री बी. विश्वनाथ रेड्डी तथा चित्रकार भी दर्शित हैं।

उस अवसर पर श्रीमती गांधी ने चन्दामामा की सफलता पर अपना हर्ष व्यक्त किया।

अनेक कार्यक्रमों में व्यस्त रहते हुए भी श्रीमती गांधी ने अपना अमूल्य समय प्रदान किया, इसके लिए अपने पाठकों की ओर से चन्दामामा उन्हें अपनी हार्दिक कृतज्ञता अभिव्यक्त करता है।

चन्दामामा
संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी
इस महीने की बेताल कथा 'गीता का रहस्य' है। इस अंक के साथ 'मित्र-भेद' समाप्त होता है और अगले अंक से 'मित्र-संप्राप्ति' प्रारंभ होता है।
धन वैसे सबको आकृष्ट करता है, पर उस धन के पीछे विभिन्न प्रकार की संस्कृति होती है। जो लोग धन की इच्छा रखते हैं, उन्हें भली भांति यह देखना चाहिए कि वह संस्कृति उन के लिए अनुकूल पड़ती है या नहीं? वरना निराश होना पड़ता है। 'माँ-बेटी' कहानी हमें यही नीति बताती है।
वर्ष : २८ मार्च १९७६ अंक : ९
A CHANDAMAMA PUBLICATION
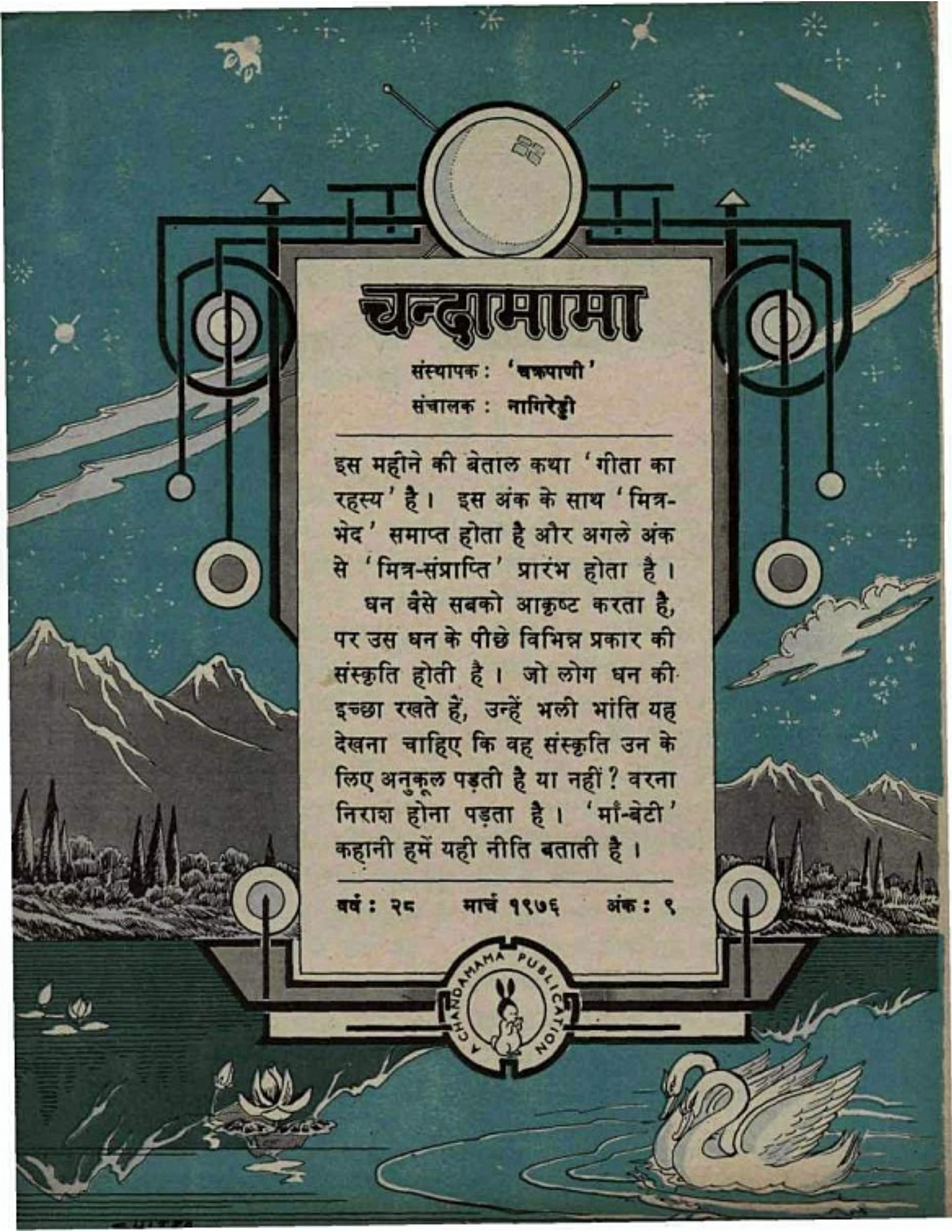
मित्र-भेद

[३२]

राजमहल में एक पालतू बंदर था। राजा ने उसकी चेष्टाओं पर प्रसन्न हो उसे अपना अंगरक्षक नियुक्त किया। बंदर राजा का खड्ग हाथ में लिये दर्प के साथ चलता तो लोग हँसी के मारे लोट-पोट हो जाते थे। राजोचित भोजन खाकर वह बंदर ख़ूब हट्टा-खट्टा व सुंदर बना। राजा ने उसके लिए एक बढ़िया तलवार बनाकर दी। वह सदा उसी तलवार को लिए टहला करता था।

राजमहल के निकट ही एक सुंदर बाग था। उसमें नाना प्रकार के फल व फूल थे। जाड़े के मौसम की एक रात को राजा तथा रानी उस बाग़ में टहलने के ख़्याल से पहुँचे। राजा के साथ चलनेवाले सेवक व अनुचर बाग के द्वार पर ही रुक गये। मगर बन्दर उनके साथ ही लगा हुआ था। बड़ी देर तक राजा-रानी चाँदनी रात में फूलों की शोभा का अवलोकन करके आनंदित हुए और अंत में एक झाड़ी के भीतर प्रवेश किया।

राजा ने बंदर से कहा–"मैं सो जाता हूँ। मेरे सोते समय इस बात का ख़्याल रखना कि मेरी निद्रा भंग न हो।" यों कहकर राजा सो गया। इसके थोड़ी देर बाद रानी भी सो गई। बंदर अपने कंधे पर तलवार लिए खड़ा रहा।

थोड़ी देर बाद पुष्पों के बीच मंडराते हुए एक भ्रमर राजा के शरीर पर की गंध से आकृष्ट हो उसके सिर पर जा बैठा।

इसे देख बंदर क्रोध में आ गया। उसने सोचा–"मेरे यहाँ रहते यह क्षुद्र कीड़ा क्या राजा के सर पर बैठने का दुस्साहस भी कर सकता है?" यों सोचते

अंतिम पृष्ठ का चित्र

उसने बायें हाथ से उसको भगा दिया। लेकिन थोड़ी देर बाद वह भ्रमर पुनः उड़ते हुए आया और राजा के सर पर जा बैठा। बंदर ने कई बार उसे भगाने की कोशिश की, किंतु वह पुनः पुनः आकर राजा के सिर पर जा बैठता था।

बंदर ने क्रोध में आकर कहा–"ठहर जा, अभी मैं तेरी ख़बर लेता हूँ।" यों कहते उसने अपने हाथ की भारी तलवार उठाकर भ्रमर पर दे मारा। उस प्रहार से राजा का सिर कट गया और राजा ज़ोर से चीखकर उसी क्षण मर गया।

उस चिल्लाहट को सुनकर रानी जाग उठी और बन्दर से पूछा–"अरे पापी! राजा ने तुम पर विश्वास किया तो तुमने उनके साथ विश्वासघात क्यों किया?" इस पर बन्दर ने सारी कहानी सुनाई। राज-परिचारकों ने आकर उसे मार भगाया, और सभी लोग दुख में डूब गये।

इसके बाद मंत्री का पुत्र वहाँ आ पहुँचा। उसने सारा वृत्तांत जानकर कहा–"मूर्ख मित्र की अपेक्षा विवेकशील शत्रु कहीं अच्छा होता है। राजा का वध करने की कामना करनेवाला शत्रु विवेकशील था, इसलिए उसने राजा के प्राणों की रक्षा की, परंतु वही राजा मूर्ख मित्र बंदर के हाथों में मर गया।"

करटक ने दमनक को यह कहानी सुनाकर कहा– "हमारे सिंह के यहाँ भी इसी प्रकार तुम जैसे मूर्ख प्रिय व्यक्ति की अपेक्षा विवेकशील शत्रु होता तो कहीं अच्छा होता। तुम भलीभाँति याद रखो; सदा अपराध अपराध ही होता है। प्यास लगने पर भी मानव कीचड़ से भरे गड्ढे का पानी नहीं पीता। मगर तुम जैसे राजनीतिज्ञों के विचार कुछ अस्त-व्यस्त होते हैं। जुगनू अग्नि जैसे प्रतीत होता है। आकाश समतल दीखता है। झूठ सत्य के रूप में और सत्य झूठ के रूप में लगता है। यह सब किसलिए? स्वार्थ को छोड़ और अच्छी भावना न होने

के कारण ही। तुम्हारे व्यवहार को देख हमारे शासकों को यह सबक़ सीखना होगा कि तुम जैसे एक स्वार्थ बुद्धिवाले व्यक्ति की बातें सुनने की अपेक्षा दस अनुभवी हितैषियों की सलाह लेना सीख ले!"

दमनक के दिमाग में ये बातें नहीं बैठीं, कपट हँसी हँसकर अपने भाई को छोड़ वह कहीं चला गया। इस बीच पिंगलक तथा संजीवक ने पुनः अपनी लड़ाई जारी की। पिंगलक बुरी तरह से घायल हुआ, पर अंत में उसने संजीवक को मार डाला।

ख़ून से लतपथ अपने पुराने मित्र की लाश को देखने पर पिंगलक के मन में उसके प्रति दया उत्पन्न हुई। उसने अपने मन में सोचा-"ओह! मैंने कैसा अन्याय किया? हम दोनों आज तक अभिन्न रहें। उसको मारकर में भी अध मरा हो गया हूँ।"

उस वक़्त दमनक ने पिंगलक के निकट पहुँचकर पूछा-"महाराज! आप चिंतित क्यों हैं? चाहे शत्रु हमारे पिता हो, भाई हो, पुत्र हो या मित्र हो, अवश्य उसका वध करना चाहिए! इसी प्रकार दुर्बल राजा, अनियंत्रित न्यायाधिपति, दुश्शीला पत्नी, कपट मित्र तथा घमण्डी सेवक को तत्काल हटाना चाहिए। साधारण व्यक्ति जिन नीतियों का पालन करते हैं, वे एक राजा के लिए लागू नहीं होतीं। अन्यों में जो दोष कहलाता है, वह राजा में एक गुण माना जाता है। राजा को समय एवं संदर्भ के अनुसार विश्वसनीय एवं अविश्वसनीय भी बने रहने चाहिए। उन्हें क्रूर तथा दयाशील भी रहना चाहिए। वे कठोर तथा कोमल हों, दाता भी हों और लोभी हों। धन का उपयोग पानी की तरह बहा करके भी करे और दवा की भाँति भी उपयोग में लावे। आपने अपने सिंहासन पर दाँत गड़ाये हुए संजीवक का वध करके अच्छा ही किया है।"

इन बातों से पिंगलक की मानसिक व्यथा थोड़ी शांत हो गई। दमनक को अपना मंत्री नियुक्त करके पिंगलक पुनः यथावत जंगल पर शासन करने लगा।

माया सरोवर

[२]

[जयशील नामक युवक बुरे व्यसनों के शिकार हो अल्प काल में ही अपनी सारी पैतृक संपत्ति खो बैठा। उस हालत में जुए के घर के पास एक राज कर्मचारी से उसका झगड़ा हुआ। परिणाम स्वरूप उसे देश निकाला सजा प्राप्त हुई। जयशील अपने देश को छोड़ दूसरे राज्य की राजधानी के निकट पहुँचा।...बाद –]

उस रात को जयशील ने जटाओंवाले एक विशाल बरगद के नीचे अपना वक़्त बिताना चाहा। उसे लगा, अंधेरा हो जाने से नगर में प्रवेश करना खतरे से खाली नहीं है। मैले व चीथड़ोंवाले उसे देखने पर राजभट उसे चोर या डाकू समझकर कारागार में डाल सकते हैं।

यों सोचकर जयशील बरगद की जड़ से पृथ्वी पर निकल आई एक चौड़ी जड़ को अपना तकिया बनाकर लेट गया। थोड़ी ही देर में उसे नींद आ गई। ठीक आधी रात के वक़्त निकट ही लोमड़ियों की चिल्लाहट हुई जिससे उसकी आँखें खुल गईं। वहाँ से अनति दूर पर पेड़ों की ओट में से मंद प्रकाश तथा ऊपर उठनेवाला धुआ भी उसे दिखाई दिया।

जयशील सोचने लगा–"ऐसा मालूम होता है कि मैं किसी श्मशान प्रदेश के

बरगद के नीचे सो रहा हूँ। लोग कहते हैं कि ऐसी जगह तो भूत-प्रेत व पिशाच हुआ करते हैं।" यों सोचते उसने घनी शाखाओं में देखा, पर उसे कुछ नहीं दिखाई दिया। अपनी इस शंका पर वह मन ही मन हँस पड़ा। उसने एक बार अपनी तलवार की मूठ को टटोलकर देखा, फिर आँखें मूंद लीं।

उसकी आँखें झपकने ही वाली थी कि उसे यह आर्तनाद सुनाई पड़ा–"बचाओ, बचाओ, मुझको महाकाल निगलना चाहता है!"

जयशील तत्काल उठ खड़ा हुआ। म्यान से तलवार खींचकर उस दिशा में दौड़ा जिस दिशा से यह आर्तनाद सुनाई दिया। वह सचमुच एक श्मशान था। दूर पर दो-तीन लाशें जल रही थीं। उन ज्वालाओं की रोशनी में काले वस्त्र धारण किये, केश बिखेरे, आर्तनाद करते हुए दौड़नेवाला एक व्यक्ति उसे दिखाई दिया। सारी देह पर सफ़ेद वस्त्र अच्छादित एक आकृति उस व्यक्ति का पीछा कर रही थी।

जयशील तलवार उठाकर आर्तनाद करनेवाले व्यक्ति की ओर दौड़ते चिल्ला उठा–"तुम डरो मत! तुम्हारे प्राण लेने आनेवाले दुष्ट को मैं अपनी तलवार की बलि दूँगा।"

यह चिल्लाहट सुनते ही काले वस्त्रधारी जयशील की ओर दौड़ते आने लगा। सफ़ेद आकृतिवाला व्यक्ति उसका पीछा करते हुए चिल्ला रहा था–"ठहरो! ठहर जाओ! मैं महाकाल का सेवक हूँ! मुझ से डरनेवाले तुम क्या महाकाल का ही आवाहन करना चाहते हो? तुम्हें इसकी सजा भुगतनी ही होगी!"

जयशील ने काल को रोक कर ललकारा–"अरे दुष्ट! चाहे तुम कोई भी क्यों न हो? मैं तुमसे बिलकुल नहीं डरता। लेकिन जो पीठ दिखाकर भाग रहा है, उसका पीछा करते हुए

मारने का प्रयत्न करते देख मैं सहन नहीं कर सकता।"

ये बातें सुन काल विकृत रूप में हँस पड़ा और बोला–"शाबाश युवक! तुम में वीर युवक के थोड़े लक्षण हैं! लो, देखो, मेरा असली रूप!" यों कहते काल ने अपने सफ़ेद वस्त्र को हटाकर दूर फेंक दिया।

अब उस काल का रूप अत्यंत भयंकर था। उसकी देह काली थी। उसकी आँखों से आग निकल रही थी। मुँह से ज्वालाएँ फूट रही थीं, उसने भयंकर रूप से गर्जन किया।

जयशील पल भर के लिए निश्चेष्ट हो गया, मगर तुरंत वह संभल गया। काल की छाती की ओर अपनी तलवार का निशाना बनाकर बोला–"अरे दुष्ट! यह मत सोचो कि मैं तुम्हारे विकृत रूप को देख डर जाऊँगा। भागनेवाले को मारने की इच्छा रखनेवाले तुम कायरों से भी गये बीते हो!"

ये बातें सुन काल एक क़दम पीछे हटाकर बोला–"हे युवक! मैं तुम्हारे साहस पर बहुत ही प्रसन्न हूँ। लेकिन अमानवीय शक्तियों पर महा सत्व ही अधिकार कर सकते हैं। अब तक मुझ पर आवाहन करनेवाला सिद्ध साधक अल्प सत्व है, ऐसे व्यक्ति को कभी भी प्राणों के साथ छोड़ देना नहीं चाहिए। तुम मेरे रास्ते से हट जाओ।" इन शब्दों के साथ काल आगे बढ़ने को हुआ।

जयशील ने काल की छाती पर तलवार आड़े रखा और इस ख्याल से पीछे मुड़कर देखा कि आर्तनाद करनेवाला सिद्ध साधक कहाँ है? परंतु साधक भय विह्वल हो भागने का प्रयत्न किये बिना श्मशान में ही इधर-उधर चक्कर लगाते आर्तनाद कर रहा था।

जयशील ने सोचा कि वह पहले सिद्ध साधक के यहाँ जाकर उसे सांत्वना दे, मगर इस बीच काल ने 'हूम, ह्रीम्' कहते अपने हाथ से तलवार को हटाया।

जयशील ने काल के कंठ पर तलवार चलाई। काल का कंठ कटकर दूर जा गिरा। दूसरे ही क्षण कटा हुआ सिर पृथ्वी पर उछलते हुए ज़ोर से हंस पड़ा और बोला—"जयशील! निस्संदेह तुम महान वीर हो! मेरे कंठ के रक्त से सनी तुम्हारी तलवार अमोघ शक्तियाँ रखनेवाली है। जाओ, तुम जो कुछ चाहते हो, प्राप्त कर लो। तुम्हें सर्वत्र सफलता हाथ लगेगी।"

जयशील काल की बातों पर विस्मय में आ गया, दो-चार क्षण मौन रहा, फिर बोला—"काल! मैं कोई अद्भुत कार्य साधने के लिए घर से निकला हुआ व्यक्ति नहीं हूँ। मेरी जीविका चलाने के लिए किसी राजा के यहाँ छोटी-सी नौकरी मिल जाय तो मेरे लिए पर्याप्त है। मैं उसी से संतुष्ट हो जाऊंगा।"

इस बार काल के कंठ ने कोई उत्तर नहीं दिया। जयशील ने सोचा कि काल की मृत्यु हो गई है। उसने कटे सिर के निकट जाकर तलवार से उसे इधर-उधर हिलाकर देखा। वह निर्जीव-सा प्रतीत हुआ। वह मृत व्यक्ति कोई बलवान लगता था। उसके कान और नाक में चाँदी के आभूषण पड़े थे। उसके कंठ में कसकर बंधी मनकों की माला पड़ी थी।

जयशील ने अपनी तलवार म्यान में रख दी। काले वस्त्रवाले साधक के वास्ते चारों ओर अपनी नज़र दौड़ाई। लेकिन वह कहीं दिखाई नहीं दिया। इस पर जयशील सोचने लगा—'साधक कहाँ चला गया? भय के मारे कलेजा फट जाने के कारण वह इधर कहीं पेड़-पौधों के नीचे गिर तो नहीं गया है?' यों सोचते वह बरगद की ओर बढ़ा।

अब बरगद की शाखाओं में उल्लुओं की बोली के साथ दूर पर लोमड़ियों की चिल्लाहटें भी शुरू हो गई थीं। जयशील ने सोचा कि ऐसी हालत में

CHITRA

वहाँ पर सो जाना मुश्किल है। साथ ही प्यास के मारे उसकी जीभ सूखती जा रही थी।

जयशील सोचने लगा–"अब ऐसा मालूम होता है कि रात का तीसरा पहर भी बीत चला गया है। यहीं आसपास में कोई तड़ाग हो तो पहले अपनी प्यास बुझाऊँगा। सवेरा होते ही नगर में चला जाऊँगा। कपड़े तो फटे हुए हैं। कमर से लटकनेवाली तलवार तथा म्यान पर की नक्काशी देख लोग सोचेंगे कि मैं कोई बड़ा कुलीन व्यक्ति हूँ। मैं उन लोगों से कहूँगा कि जंगल में एक सिंह के साथ जूझना पड़ा जिस से मेरे ये वस्त्र फट गये हैं।" यों सोचते जयशील बरगद को छो। वहाँ से चल पड़ा।

थोड़ी दूर जाने पर उसे एक छोटा-सड़ घर तथा उस घर की खिड़की में से जलनेवाले दीपक की रोशनी भी दिखाई दी। यह सोचते जयशील उस मकान के निकट पहुँचा कि पहले उस घर के मालिक से पानी माँगकर अपनी प्यास बुझा लूँ। दर्वाजे के निकट जाकर पुकारा–"महाशय! मैं एक यात्री हूँ। क्या पानी देकर मेरी प्यास बुझा सकते हैं?"

कुछ ही क्षणों में दर्वाजा खुला। एक बूढ़ी औरत हाथ में दीपक लिए बाहर के अंधकार में झाँकते हुए बोली–"अरे भाई! इस रात के वक़्त किसी सराय में आराम से सोये बिना तुम यात्रा कर रहे हो? अन्दर चले आओ, पानी पिलाऊँगी।"

जयशील अन्दर चला गया। बूढ़ी ने दीपक की रोशनी में उसकी ओर ध्यान से देखा, विस्मय में आकर पूछा–"मैंने सोचा था कि तुम वृद्धावस्था में तीर्थयात्राएँ करनेवाले यात्री हो! यह क्या, इतनी छोटी-सी उम्र में तलवार कमर पर बाँधे आधी रात के वक़्त इस जंगली प्रदेश में घूम रहे हो? तुम कहीं संसार से विरक्त होकर तीर्थ यात्राएँ तो नहीं कर रहे हो?"

जयशील इसका उत्तर देने को हुआ, तभी बूढ़ी ने उसको रोकते हुए कहा– "पहले तुम अपनी प्यास बुझा लो, मैं पानी ले आती हूँ। उस तख्ते पर बैठ जाओ।" यों कहकर वह बूढ़ी जल्दी-जल्दी एक दूसरे कमरे में गई, एक लोटे भर पानी ले आई।

जयशील पानी पीकर बोला–"माई, तुमने मेरी जान बचाई! इस घर में तो तुम अकेली रहती हो क्या?"

"बेटा! मेरे कोई नहीं है। न मेरे कोई संतान हुई है। मेरे पति एक साल-भर पहले गोलोकवासी हो गये हैं! वे राजाश्रित थे, उनके मरने के बाद मैं अनाथा बन गई। इसलिए राजा मेरे पति की तनख्वाह में से एक तिहाई मेरे भरण-पोषण के लिए प्रति मास दे रहे हैं, उसी से मैं अकेली इस मकान में अपना समय काट रही हूँ।" बूढ़ी ने रुद्ध कंठ से उत्तर दिया।

"माई! मैं इस प्रदेश में नया-नया आया हूँ। क्या यह बता सकती हो कि इस प्रदेश के निकट के नगर का क्या नाम है? यहाँ के राजा का नाम क्या है?" जयशील ने पूछा।

बूढ़ी ने गहरी निश्वास लेकर कहना शुरू किया–"बेटा, यह हिरणयपुर है। यहाँ के राजा का नाम कनकाक्ष है। वे प्रजाहित चाहते शासन करनेवाले धर्मात्मा हैं। मगर इधर एक महीने पहले उनकी विवाह योग्य एक कन्या तथा राज्याभिषेक करनेवाले युवराज को कोई अपहरण करके ले गये हैं। उस दिन से राजा ने चिंता के मारे खाट पकड़ ली है। उनकी हालत देख प्रजा भी दुखी है।"

ये बातें सुन जयशील सोचने लगा– "अपनी पुत्री तथा पुत्र को खोकर चिंता में घुलनेवाले राजा से नौकरी की याचना कैसे करे?" इस पर उसे लगा कि पहले अपनी आजीविका के उपाय की अपेक्षा राजा की विपदा के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

उसने बूढ़ी से पूछा–"नानीजी! राजा के पुत्र और पुत्री को कोई शत्रु राजा अपहरण करके ले गया होगा, बस यही तो हुआ है न?"

"बेटा, यदि ऐसा हुआ होता तो कोई सवाल ही न था। उस शत्रु राजा का वध करके राजा कनकाक्ष अपनी पुत्री और पुत्र को वापस ले आते! लोग कहते हैं कि अपहरण करनेवाला व्यक्ति कोई राक्षस या यक्ष होगा!" वृद्धा ने कहा।

बूढ़ी की बात पूरी न हो पाई थी कि उसके घर के सामने कोलाहल मच गया। एक ने रोते हुए कहा–"महाशय! श्मशान में मेरे पिता का सिर काटनेवाला इसी ओर आया है। इस ब्राह्मणी के घर में दीपक जल रहा है, कृपया उनसे पूछिये, शायद उन्होंने उस व्यक्ति को देख लिया हो!"

"अरे कम्बख्त! मुँह बन्द कर लो! उस महावीर ने भूत गणों के सरदार काल को मार डाला है! मैं सिद्ध साधक हूँ, ये बातें मैं अच्छी तरह से जानता हूँ!" दूसरा व्यक्ति क्रोधपूर्ण स्वर में कह रहा था।

उन दोनों को डांटते हुए तीसरा व्यक्ति कह रहा था–"तुम दोनों चुप रह जाओ। श्मशान का पहरेदार कभी का मर गया था, वह कैसे ज़िंदा हो गया? मंत्री ने इन सारी बातों का पता लगाने के लिए मुझे भेजा है। मैं इस नगर का रक्षक हूँ। मुझे कोई मत रोको।"

यह वार्तालाप सुनकर जयशील बूढ़ी से बोला–"नानीजी! लगता है कि मेरी खोज में नगररक्षक तथा कुछ राज भट भी यहाँ पर आये हुए हैं। तुम्हारे घर में रहना मेरे लिए तो कोई आपत्ति की बात तो नहीं है न? या पिछवाड़े के रास्ते से मैं बाहर अभी अभी चला जाऊँ? जल्दी सोचकर बताओ।"

बूढ़ी जवाब देने ही जा रही थी, तभी नगर रक्षक द्वार के समीप पहुँचकर चिल्ला उठा–"भीतर कौन है? जल्दी दर्वाजा खोल दो।" (और है)

गीता का रहस्य

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया, पेड़ से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–" राजन, आप जैसे उत्तम व्यक्ति को ऐसा नीच कार्य नहीं करना चाहिए। यह आप के पतन का कारण बन जाएगा। इसके उदाहरण स्वरूप मैं आप को रंगेश नामक डाकुओं के नेता की कहानी सुनाऊँगा। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये :

बेताल यों कहने लगा : कई साल पूर्व रंगपूर नामक नगर के समीप एक घना जंगल था। उस जंगल में एक डाकू अपने परिवार के साथ रहा करता था। उसी डाकू का पुत्र रंगेश था। रंगेश बड़ा ही प्रखर बुद्धिवाला था। वह अपनी चौदह साल की उम्र से ही अपने पिता के साथ

बेताल कथाएं

चोरी करने जाने लगा था। इसलिए जल्द ही वह चोर विद्या में कुशल बना, और इतनी कुशलता प्राप्त की जिससे वह अपने पिता के बाद चोरों का नेता बन सके।

रंगेश जब छोटा था, तभी वह एक बार रंगपूर के एक उत्सव में गया। वहाँ पर उसने भगवद्गीता का पारायण सुना। उस दिन उसने यह जान लिया कि इस दुनिया में जो कुछ होता है, उसके जिम्मेवार भगवान हैं। परंतु मानव चाहे जिस किसी भी धर्म का आचरण करे, अपने को प्राप्त होनेवाले भले-बुरे तथा सुख-दुखों से अछूता रहे तो उसे मोक्ष प्राप्त होगा। ये बातें रंगेश के दिल में अच्छी तरह घर कर गईं।

अपने पिता के श्रम के फलस्वरूप रंगेश थोड़े ही समय में डाकुओं के दल का नेता बना। अपने पेशे के नियमों के अनुरूप चोरियाँ तथा डाका डालते उसने काफी धन कमाया। मगर वह भगवद्गीता की बातों को कभी नहीं भूला। उसके मन में भगवान के प्रति जो विश्वास था वह कभी ढीला नहीं हुआ। राजा के सिपाही जब-तब जंगल में घुसकर डाकुओं पर हमला किया करते थे, एक बार अचानक हमला हुआ, इस पर डाकू जहाँ-तहाँ भाग गये और सबने अपने प्राणों की रक्षा की। रंगेश को भी लाचार होकर भाग जाना पड़ा।

रंगेश ने अपने घोड़े को बहुत दूर तक दौड़ाया। आखिर अपनी प्यास बुझाने के लिए एक आश्रम में प्रवेश किया। उस आश्रम में एक वृक्ष के नीचे एक मुनि तपस्या करते समाधि में मग्न था। उसकी बगल में एक कमण्डलु था, पर उसमें पानी न था।

आखिर विवश हो रंगेश ने उस मुनि का कंधा थपथपाकर पूछा—"महाशय! मुझे बड़ी प्यास लगी है। कृपया पीने को पानी दे दीजिए।" मुनि ने आँखें खोलकर देखा और क्रोध में आकर रंगेश को शाप दिया—"अरे मूर्ख! तुमने मेरी तपस्या भंग कर दी, इसलिए तुम पत्थर बन जाओ।"

"मुनिवर, पहले कृपया मुझे थोड़ा पानी दीजिए!" रंगेश ने फिर पूछा ।

मुनि को इस बात का आश्चर्य हुआ कि उसके शाप देने पर भी उसकी अपूर्व शक्ति का कोई फल न निकला, तब उसने सोचा कि रंगेश कोई महान पुरुष होगा, और अपनी शक्ति के बल पर कमण्डलु में पानी मंगवाकर रंगेश को दिया। रंगेश ने अपनी प्यास बुझा ली, तब अपनी करनी पर क्षमा माँगकर थोड़ी देर विश्राम किया और अपने घर लौट गया ।

रंगेश का एक पुत्र था। दिन बीतते-बीतते वह बड़ा हो गया । इस पर रंगेश ने अपने पुत्र का विवाह बड़े ही वैभव के साथ संपन्न किया । उस विवाह की वजह से जंगल में जो कोलाहल हुआ, उसका पता लगाकर गुप्तचरों ने इसकी सूचना राजा को दी । राजा ने बड़ी भारी सेना भेज दी । सेना ने आधी रात के वक़्त डाकुओं के उस प्रदेश पर घेरा डाला । रंगेश का दल सैनिकों के हाथ बन्दी बना । रंगेश का पुत्र और उसकी बहू भी सैनिकों के हाथ बन्दी बनाये गये, पर अकेला रंगेश बड़ी सूझ-बूझ के साथ बचकर अपने घोड़े पर भाग गया ।

राजा ने सभी चोरों को कारागार में बन्द किया और इस बात का ढिंढोरा पिटवाया कि यदि रंगेश एक सप्ताह के अन्दर स्वयं राजा के सामने हाज़िर न हो जाये तो उसके पुत्र और पुत्र-वधू के सर

कटवाकर क़िले पर लटकवा दिये जायेंगे। मगर जब यह ढिंढोरा पिटवा गया था, उस वक़्त रंगेश नगर से बड़ी दूर पर था, इस कारण उसे समय पर यह समाचार नहीं मिला। जब यह समाचार मिला, तब तक एक सप्ताह की अवधि बीत चुकी थी, लौटकर उसने देखा कि क़िले के द्वार पर उसके पुत्र तथा पुत्र-वधू के सर लटक रहे हैं, उन्हें देख रंगेश दुख में डूब गया। उसके मुंह से अनायास ही निकल गया— "ओह! इस पापी राजा ने अन्याय पूर्वक दो भोले-भाले लोगों की जान ले ली है! यह कैसा अत्याचार है?" इसके दूसरे ही क्षण रंगेश एक पत्थर के रूप में बदल गया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा— "राजन, मुनि ने जब रंगेश को शाप दिया, तब वह पत्थर के रूप में नहीं बदला, पर अंत में वह बिना शाप के ही क्यों पत्थर के रूप में बदल गया? इस संदेह का समाधान जानते हुए भी न दोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने यों उत्तर दिया— "रंगेश में जो बड़ी शक्ति थी जिसके कारण मुनि के शाप का उस पर कोई असर न हुआ। वह शक्ति उसे इसलिए प्राप्त थी कि भगवान के प्रति उसके मन में पूर्ण विश्वास था, साथ ही वह हृदय पूर्वक यह मानता था कि वह जो भी काम करता है, भगवान के संकल्प मात्र से करता है और वह केवल एक साधन मात्र है। मगर जब उसने अपने पुत्र तथा पुत्र-वधू के सिरों को क़िले के द्वार पर देखा, तब उसका विश्वास जाता रहा। जब वह उन दोनों की रक्षा करने आ निकला, तभी ईश्वर के निर्णय के प्रति उसका विश्वास हिल गया। उसने जब यह माना कि उनकी मृत्यु का कारण केवल राजा ही है, तब उसका संपूर्ण विश्वास जाता रहा, इस कारण उसे तुरंत मुनि का शाप लग गया।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

माँ-बेटी

एक गाँव में रामशास्त्री नामक एक ब्राह्मण था। वह वेद एंव शास्त्रों में प्रवीण था। वह पुरोहिताई करते हुए दूसरों की तक़लीफ़ों में यथाशक्ति अपना हाथ बाँटा करता था। इस कारण गाँववाले उसका आदर करते थे। मगर वह अपनी पत्नी सुगुणा की दृष्टि में एक साधारण ब्राह्मण पुरोहित मात्र था।

सुगुणा को यह बात उचित न जंची कि उसके पति से भी कम शिक्षित व्यक्ति कहीं ज्यादा धन कमा रहे हैं और उसका पति तो परोपकार के नाम पर धन कमाने के प्रति ज्यादा रुचि नहीं दिखा रहे हैं। उसने जब-तब अपने पति को सलाह दी कि वह दुनियादारी सीखे। परंतु रामशास्त्री ने अपनी पत्नी की बात नहीं मानी। उल्टे वह कहता–"अन्य लोगों के सुख-दुखों में हाथ बँटाना ही सब से बड़ी संपत्ति है।"

अपने पति की आमदनी कम थी, उल्टे अड़ोस-पड़ीसवालों की मदद देना सुगुणा को तक़लीफ़ मालूम होने लगी।

रामशास्त्री के तीन पुत्रियाँ हुईं। उसने अपनी लड़कियों की जन्मकुंडलियाँ जाँचकर उनके भविष्य के अनुरूप क्रमश: उनके नाम लक्ष्मी, कलावती, और धीरमती रखे। लक्ष्मी का संपत्ती-योग था, कलावती अनेक कलाओं में प्रवीण बन जाएगी और धीरमती कठिन परिस्थितियों में भी विचलित हुए बिना साहसपूर्वक उनका सामना कर सकती है।

उन कन्याओं की जीवनियाँ रामशास्त्री के विचारों के अनुरूप बन गईं। लक्ष्मी के साथ एक संपन्न व्यक्ति ने विवाह किया।

कलावती बचपन से ही नृत्य और संगीत में अभिरुचि रखती थी। उसने अपना पूरा समय इन कलाओं के अभ्यास में लगा

धर्मपाल सिंह

दिया। वह उन कलाओं में प्रवीण बन गई। उसके कला-कौशल पर मुग्ध हो एक कलाप्रेमी उच्च अधिकारी के पुत्र ने उसके साथ विवाह किया। कलावती के प्रवेश से उसका ससुराल कलानिलय ही बन गया। देश के अनेक कलाकार कलावती के घर पहुंचकर गोष्ठियां चलाया करते थे।

लेकिन धीरमती को कोई बढ़िया संबंध न मिला। उसके साथ विवाह करने को कोई आगे न आया। इस पर रामशात्री ने बड़े ही प्रयत्नपूर्वक एक छोटे से गांव के पुरोहित के साथ उसका विवाह किया। सुगुणा को वह संबंध कतई पसंद न था, पर धीरमती यह सोचकर दुखी भी न हुई; उसने केवल यही कहा था–"बुद्धिमत्तापूर्वक जीने के लिए संपत्ति की कोई आवश्यकता नहीं है।"

तीनों पुत्रियों की शादी के थोड़े ही दिन बाद रामशास्त्री बीमार पड़ा। अपने अंतिम दिन निकट आये जानकर रामशास्त्री ने अपनी पुत्रियों को इसकी खबर कर दी। बड़ी दोनों पुत्रियां न आई, लेकिन धीरमती खबर के मिलते ही अपनी मायके चली आई। लक्ष्मी तथा कलावती के न आने पर रामशास्त्री दुखी हुआ।

मगर सुगुणा ने अपनी दोनों बड़ी बेटियों का समर्थन करते हुए कहा–"लक्ष्मी को घर से निकलना साधारण बात थोड़े ही हैं? उनका घर तो एक कचहरी के समान है। आप क्या जामते हैं कि वह कैसी भारी जिम्मेदारियां वहन करती हैं। अब कलावती की बात तो कहने की कोई जरूरत ही नहीं है। उसके घर देश-विदेशों के कलाकार आया करते हैं। उसका घर राजा के एक विश्राम गृह जैसा लगता है। उन सबसे छुट्टी पा लेना आसान काम थोड़े ही हैं!"

रामशास्त्री ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। इसके बाद दिन-प्रतिदिन उसकी बीमारी बढ़ती ही गई। देरी से ही सही, उसकी दोनों बड़ी बेटियां आ पहुंचीं।

लक्ष्मी ने मायके पहुँचते ही अपने पिता के मना करने पर भी बड़े बड़े वैद्यों को बुलवाकर इलाज कराया, परंतु उसकी बीमारी नहीं घटी।

एक दिन रामशास्त्री ने अपनी पत्नी को निकट बुलाकर गुप्त रूप से यों समझाया– "अब मेरा समय समाप्त हो गया है। मेरी सलाह है कि मेरे अनंतर तुम्हारा धीरमती के घर में रहना ही उचित होगा।"

इस पर सुगुणा को गुस्सा आ गया।

"आप धीरमती के प्रति ऐसा पक्षपात क्यों करते हैं? वास्तव में उसके पास खाने को हो तो मुझे खिला सकती है? लक्ष्मी के यहाँ भारी संपत्ति है। क्या वह मुझे नहीं खिला सकती? अब रही कलावती की बात! उसके घर अतिथि बनकर दूर-दूर से लोग आया-जाया करते हैं। ऐसी हालत में क्या मैं अकेली उसके लिए बोझ बन जाऊँगी? इन दोनों बेटियों के घर छोड़कर मैं धीरमती के घर जाकर क्या उसकी दरिद्रता के बोझ को और भी बढ़ा लूँ?"

इसके जवाब में रामशास्त्री ने कुछ नहीं कहा। इसके थोड़ी देर बाद रामशास्त्री ने अपनी पत्नी को अपनी बेटियों के हाथ सौंप दिया और सदा के लिए आँखें मूंद लीं।

सुगुणा ने रामशास्त्री की अत्येष्ठि क्रियाएँ यथावत् संपन्न कराईं और अपने पति की सलाह की परवाह किये बिना बड़ी पुत्री लक्ष्मी के साथ रवाना हो गई। वहाँ पर उसका अतिथि-सत्कार हुआ। जब तक

पति ज़िंदा था, तब तक उसे अपने घर के काम-काज के साथ अड़ोस-पड़ोसवालों की छोटी-बड़ी मददें भी करनी पड़ती थी। अब अपनी बेटी के घर ऐसा कोई काम न था, उसने सोचा कि बिना काम-वाम के बेटी के घर सुख पाना शायद ऐसा ही है! मगर यह सुख उसे कई दिनों के लिए बदा न था। लक्ष्मी को इस बात पर बड़ी खीझ हुई कि उसकी माँ कोई काम-वाम किये बिना गृहदेवी जैसी चुपचाप बैठ गई है! उस घर में सब के काम बंधे हुए थे। सब अपनी अपनी जिम्मेदारी निभाते थे। इसलिए सुगुणा का यह व्यवहार सब लोगों को बुरा ही लगा।

आखिर लक्ष्मी की सास ने एक दिन लक्ष्मी से कहा—"मेरे भी मन में तुम्हारी माँ के जैसे विश्राम लेने की इच्छा हो रही है। मैं भी उसी की उम्र की हूँ। मैं यह बेगारी क्यों करूँ? मेरे पति और पुत्र दोनों कमा रहे हैं और खिलाने के लिए तो तुम हो। इसलिए तुम्हारी माँ के साथ मेरी भी देखभाल तुम्हीं किया करो।"

उसने आखिर विश्राम ले ही लिया। अब सारा काम लक्ष्मी के सर पर आ पड़ा। लक्ष्मी की माँ के आने के पूर्व उसकी सास सारे काम थकावट का अनुभव किये बिना कर देती थी। अब उसने एक साथ असहयोग किया, इस पर लाचार हो लक्ष्मी एक-एक करके कई काम अपनी माँ से कराने लगी।

सुगुणा को लक्ष्मी का यह व्यवहार पसंद न था, फिर भी वह वे काम करती गई। मगर उन कामों का कोई अंत न होता था। अपने पति के साथ जिन दिनों में उसने दरिद्रता भोगी, उन दिनों में भी उसने इतनी सारी बेगारी न की थी। थोड़े दिन ऐसे ही बीत गये, आखिर उसने लक्ष्मी से कहा—"बेटी, एकाध काम में मैं भी हाथ बटा सकती हूँ। मगर अतिथि बनकर आई हुई अपनी माँ से एक नौकरानी की भाँति कहीं काम लिया जाता है?"

"अतिथि तो हमेशा के लिए तुम्हारे जैसे यहीं पर रह नहीं जाते। फिर भी तुम्हें यहां पर किस बात की कमी है? यदि तुम यह समझती हो कि तुम्हें यहाँ पर अच्छा नहीं लगता है तो तुम अपनी दो बेटियों में से किसी के यहाँ भी जा सकती हो?" लक्ष्मी ने कहा।

ये बातें सुनने के बाद सुगुणा को वहाँ पर एक क्षण भी ठहरने की इच्छा न हुई। वह यह सोचकर कलावती के घर पहुँची कि धीरमती के घर की अपेक्षा कलावती के घर में ज्यादा आराम से रह सकती है! अपनी माँ को देख कलावती परम प्रसन्न हुई, अनेक महान कलाकारों का उसे परिचय कराया। एक दिन सुगुणा ने कलावती को लक्ष्मी के व्यवहार का परिचय दिया, इस पर कलावती मन ही मन बहुत दुखी हुई और बोली—"माँ, तुम जिंदगी भर यहीं पर रह जाओ। यहाँ पर तुम्हें मना करनेवाला कोई नहीं है।"

सुगुणा को कलावती के घर का वातावरण अच्छा न लगा। वहाँ पर जात-पांत का भेद-भाव न था। सभी जाति व धर्म के लोग आ धमकते थे। सुगुणा सामूहिक भोजन करने अथवा दूसरों के हाथ का खाना पसंद न करती थी, इस कारण जब कलावती को अपनी माँ का विचार मालूम हुआ, तब उसने रसोइया को निकाल दिया जिससे अतिथियों को खाना बनाने व परसोने की जिम्मेदारी सुगुणा पर आ पड़ी। एक दिन सुगुणा कलावती से बोली—"बेटी! हमारी जाति और आचार, रीति-रिवाजों का भी तुम थोड़ा-बहुत ख्याल रखती हो या नहीं? आखिर सरायों में भी इस प्रकार सब जातियों के लोग एक साथ बैठकर खाना नहीं खाते। यहाँ की हालत से मैं तंग आ गई हूँ। मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता!"

"माँ, यह तुम क्या कह रही हो? कलाओं के कोई कुल व गोत्र नहीं होते! इस घर में सभी कलाकार समान हैं।

तुम्हारे आचार-विचार यहाँ पर नहीं चल सकते! तुम्हें संतुष्ट करने के लिए मैंने एक कुशल रसोइया को भी हटा दिया है। इससे ज़्यादा मैं तुम्हारे लिए इस घर में क्या कर सकती हूँ? यदि तुम अपने आचार और रीति-रिवाजों की रक्षा करना चाहती हो तो धीरमती के घर चली जाओ, शायद वहाँ पर ये सारी बातें चल सकें! तुम्हें यदि यहाँ पर रहना पसंद न हो तो वहाँ पर क्यों नहीं जाती?" कलावती ने समझाया।

सुगुणा विवश होकर धीरमती के घर पहुँची। उसने सोचा कि धीरमती उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करेगी। पर धीरमती ने अपनी माता से कहा–"माँ, जब तक पिताजी ज़िंदा रहें, तुम्हारा अच्छा ख्याल रखा। अब तुम तक़लीफ़ क्यों उठावे? तुम्हारे लिए जो कुछ संभव होगा, मैं करूँगी! तुम आराम से रहो!" धीरमती ने यथाशक्ति माँ की सेवा की। सुगुणा अपनी छोटी बेटी की गृहस्थी पर बहुत आश्चर्य चकित हुई। वैसे धीरमती संपन्न नहीं है, पर उसे किसी बात की कमी नहीं है। वह अपनी गृहस्थी संभालने के साथ साथ ज़रूरत पड़ने पर उस गाँव के सभी लोगों के कामों में हाथ बँटाया करती थी। इसलिए उसकी मदद के लिए उस गाँव के लोग सदा तैयार रहते थे।

धीरमती के अच्छे व्यवहार से परिचित होने पर सुगुणा को अपने पति की बातें याद आईं। वैसे धीरमती के पास संपत्ति न थी, पर दूसरों की सहायता करने की उदार प्रवृत्ति उस में थी। दूसरों को कठिनाइयों में फँसे देख वह देख न पाती थी। इन्हीं बातों के आधार पर सुगुणा ने समझ लिया कि उसके पति ने उसे धीरमती के घर जाने की सलाह दी है! उसे यह भी मालूम हुआ कि सुखी रहने के लिए मात्र संपत्ति पर्याप्त नहीं है।

उस दिन से सुगुणा अपनी पुत्री के साथ गाँववालों के सुख-दुखों में हाथ बँटाते अपने दिन आराम से बिताने लगी।

१७०. भूगर्भ की गुफाएँ

काले समुद्र के प्रदेश में नोवी अफोन नामक गाँव के निकट भूगर्भ में अधिक गहराई में नौ गुफाएँ हैं। उन गुफाओं की कुल लंबाई ८०० मीटर है। प्रत्येक गुफा को एक सुंदर दृश्य कहा जा सकता है। इससे बड़ी गुफाएँ केवल अमेरिका में हैं। सोवियत सरकार ने इन गुफाओं को पर्यटकों के पहुँचने लायक़ बनाया है।
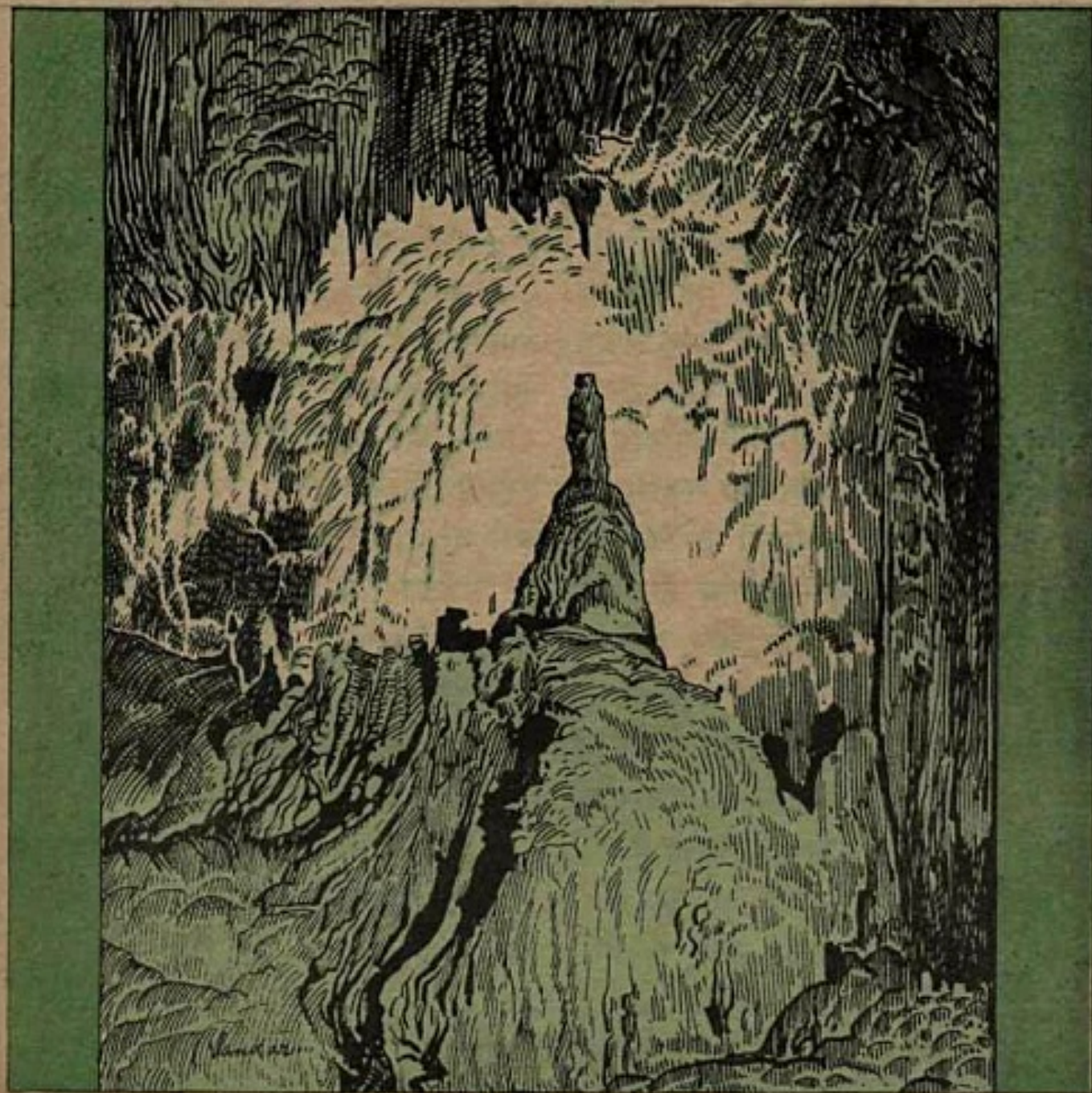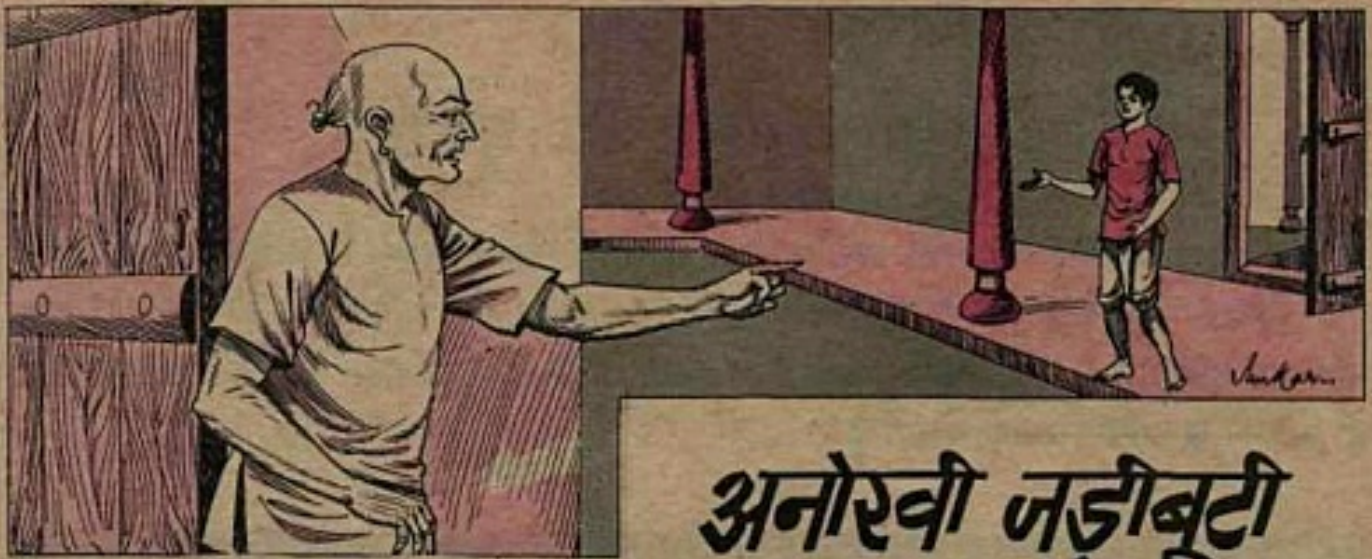
अनोखी जड़ीबूटी

सोमशेखर की नानी जब तक जिंदा रही, तब तक वह बड़े ही लाड़-प्यार में पला। बूढ़ी के मरने पर वह अनाथ बन गया।

उसी गाँव में बुधसिंह नामक एक वैद्य था। बुधसिंह चालीस साल पूर्व कहीं से उस गाँव में आया, वहीं पर उसने अपना स्थिर निवास बना लिया। धीरे-धीरे उसकी ख्याति यहाँ तक फैल गई कि आस पास के गाँवों में वह सब से बड़ा वैद्य कहलाया। वह किसी अनोखी जड़ीबूटी से परिचित था। वह उस जड़ीबूटी में वन्य चीज़ों को मिलाकर उन्हें पीस लेता और गोलियाँ बना लेता। उस गाँव के लोगों का यह विश्वास था कि बुधसिंह के हाथ से दी हुई एक गोली खा ले तो किसी भी प्रकार की बीमारी मिनटों में गायब हो जाती है।

बुधसिंह पचहत्तर साल का बूढ़ा था। उसके अपना कहनेवाला कोई न था। सोमशेखर ने सोचा कि बुधसिंह की सेवा करके उस जड़ीबूटी का रहस्य जान ले तो उसकी सारी जिंदगी आराम से कट सकती है। इसी विचार को लेकर सोमशेखर बुधसिंह के घर पहुँचा। भीतर गोलियाँ तैयार करनेवाला बुधसिंह सोमशेखर को दरवाज़े पर खड़े देख बाहर आया और बोला–"अरे भाई, तुम्हें तो कोई बीमारी नहीं है, बिलकुल चंगे हो। तुम अपने घर चले जाओ।"

"दादा! मैं किसी बीमारी का इलाज कराने यहाँ नहीं आया। इस बुढ़ापे में तुम्हारी मदद करने के लिए आया हूँ। वैसे मेरे तो कोई काम-वाम नहीं है।" सोमशेखर ने जवाब दिया।

"मेरे यहाँ ऐसा कोई काम नहीं है जो मैं तुम से करवा लूँ!" वृद्ध ने कहा।

दिनेशकुमार महतो

"मैं घर का सारा काम करूँगा। जंगल में जाकर तुम्हारे लिए आवश्यक जड़ीबूटियाँ लाऊँगा।" सोमशेखर ने समझाया।

वृद्ध ने सोमशेखर की ओर आपादमस्तक देखा और कहा–"अच्छी बात है, तब तो तुम घर का काम संभाल लो। बाक़ी काम मैं खुद कर लूँगा।"

सोमशेखर निराश न हुआ। उसी दिन वह बूढ़े के घर में काम पर नियुक्त हुआ। बूढ़ा उससे सारे काम करने देता था, मगर बूटियाँ लाने जंगल में जाते वक़्त उसे अपने साथ चलने नहीं देता था। जब वह गोलियाँ तैयार करने बैठ जाता, तब सोमशेखर को वहाँ पर पटकने न देता था।

तीन महीने बीत गये। एक दिन सोमशेखर ने बूढ़े के सामने अपने मन की बात खोल दी–"दादा! तुम तो मौत की घड़ियाँ गिन रहे हो! समस्त प्रकार की बीमारियों का इलाज़ करने की शक्ति रखते हो! एक अनोखी जड़ीबूटी की जानकारी भी रखते हो। उसका रहस्य तुम्हारे साथ ही अंत हो जाय, यह तो बड़ा ही अन्याय होगा। मुझे उसका रहस्य बतला दो। तुम्हारी मृत्यु के बाद तुम्हारे ही नाम पर मैं लोगों का इलाज़ करूँगा। सब लोग तुम्हारा नाम लेकर स्वस्थ रहेंगे।"

इस पर दादा बुधसिंह ठहका मारकर हँस पड़ा और बोला–"अबे! मैं तो बिलकुल स्वस्थ हूँ! यह मत सोचो कि मैं इतनी जल्दी मर जाऊँगा।"

इसके बाद फिर कभी सोमशेखर ने यह बात नहीं उठाई। एक वर्ष तक उसने बड़ी श्रद्धा के साथ वृद्ध की सेवा की। इस दौरान में उन दोनों के बीच परस्पर कोई अज्ञात स्नेह जुड़ गया।

एक दिन दादा बुधसिंह अचानक बीमार पड़ गया। इस पर सोमशेखर ने आँखों में आँसू भरकर कहा–"दादा, दो गोलियाँ खा लो। तुम्हारी बीमारी दूर हो जाएगी।" वृद्ध ने फीकी हँसी हँसकर कहा–"बेटा,

अब इस शरीर का अंत निकट आ गया है, यह गोली खाने से ठीक होनेवाली बीमारी नहीं है।"

इसके उपरांत वृद्ध ने सोमशेखर से पूछा–"बेटा, क्या मैं तुम्हें जड़ीबूटी का रहस्य बता दूं?"

"नहीं दादा! अभी नहीं, तुम थोड़ी देर आराम कर लो। पहले तुम्हारी बीमारी ठीक हो जाने दो, फिर देखा जाएगा!" सोमशेखर ने कहा।

उस दिन रात को बुधसिंह दादा ने अपनी खाट के पास जमीन पर लेटे सोमशेखर को जगाया और कहा–"बेटा! मैंने अपनी जड़ीबूटी का रहस्य एक ताड़पत्र पर लिख रखा है। उसे मैंने पेटी के भीतर छिपा रखा है। मेरे मरने के बाद तुम उसे पढ़ लो।"

दादा फिर कभी नहीं उठे। सोमशेखर इस तरह विलाप कर उठा, मानो उसका पिता ही मर गया हो! उसने यथाविधि दादा की अंत्येष्ठि क्रियाएँ कीं। इसके बाद उस घर में रहने की उसकी इच्छा न हुई। वह उस घर को छोड़ कहीं जाना ही चाहता था कि उसे दादा की अंतिम बातें याद आ गईं।

उसने पेटी में से ताड़पत्र निकालकर यों पढ़ा–"बेटा सोमशेखर! मेरे अंतिम दिनों में तुमने मेरी सेवा की। तुम जड़ीबूटी का रहस्य जानने के लिए ही मेरे यहाँ आये थे, लेकिन हम दोनों धीरे-धीरे दोस्त बन गये। जानते हो जड़ीबूटी का रहस्य क्या है! वह सिर्फ़ जनता का विश्वास है। मुझे जब जनता का विश्वास प्राप्त हो गया तभी से मेरी गोलियों को अपूर्व शक्ति प्राप्त हुई। मेरे अनंतर मेरा घर तुम्हारा ही होगा। मैंने पिछवाड़े में अमरूद के पेड़ के नीचे बहुत सारा धन छिपा रखा है। उस धन से तुम अपनी पसंद का कोई व्यापार करो, मेरे घर को उजड़ने न दो, तुम्हारा शुभ होगा।"

सोमशेखर ने बुधसिंह दादा को मन ही मन धनयवाद दिया और उसकी इच्छा के अनुसार चलने का निश्चय कर लिया।

भलाई में बुराई

जीवनदास ने गाँव से थोड़ी दूर पर नींबू का एक बगीचा ख़रीदा। मगर उसके हाथ एक भी नींबू नहीं लगा। कोई बगीचे से तोड़ ले जाता था। इस से बचने के लिए जीवन ने एक पहरेदार को रखा। वह भी चोरों की मदद देने लगा।

जीवन के विनोद नामक एक दोस्त था। वह नाटकों में छोटे-मोटे पात्रों का अभिनय करता था। उसने सलाह दी कि वह भूत का वेष धरकर नींबू के बगीचे के पास चोरों के पटकने से डरा देगा। आख़िर उसकी चाल चल गई। नींबू का बगीचा अब भूतों का बगीचा कहलाने लगा। उस साल जीवन के बगीचे से काफी आमदनी हुई। इससे उत्साहित होकर उसने कर्ज लिया और बगीचे पर काफी धन ख़र्च किया।

दूसरे साल जब बगीचे में खूब फल लगे थे, तभी तूफ़ान आया जिससे फल गिर गये, पेड़ उखड़ गये, भारी नुक़सान भी हुआ। इस पर जीवन ने सोचा कि बगीचा बेचकर कर्ज चुकावे, मगर उस भूतो के बगीचे को ख़रीदने के लिए कोई आगे न आया। आख़िर जीवन ने उस बगीचे को सस्ते दाम पर विनोद के हाथ बेच दिया।

डाकुओं का नेता

चांबल की घाटी में शेरसिंह के नाम से ही लोग थर थर कांप उठते थे। वह केवल लूटना और हत्याएं करना जानता था। उसके अनुचर उसके आदेश का उल्लंघन करते तो तलवार को जहर में डुबोकर अपराधी के पेट में चुभोया जाता था।

शेरसिंह तथा उसके अनुचर पहाड़ी गुफाओं में निवास करते थे। उन गुफाओं के निकट संपन्न गांव थे। डाकू उन ग्रामवासियों को डराकर अनाज तथा अन्य चीज़ें उठा ले जाया करते थे। रात के वक़्त गांव लूटते और अंधेरे में भाग जाते।

शेरसिंह पहले फ़ौज में एक सिपाही था। उसने सब प्रकार की बंदूक़ें चलाने में कुशलता प्राप्त की थी। जब वह फ़ौज में ही था, तभी उसे खबर मिली कि उसकी पत्नी का देहांत हो गया है। उसने घर लौटकर देखा, उसका घर जलकर राख हो गया है। इस अत्याचार का जिम्मेदार उसी गांव का जमीन्दार था। उसी जमीन्दार ने शेरसिंह की पत्नी तथा उसके छोटे लड़के की हत्या कराई थी।

शेरसिंह उस दृश्य को देख क्रोध में आया, तब वह जमीन्दार के घर की चहार दीवारी लांघकर घर में घुस गया। जमीन्दार तथा उसके सारे परिवार की बुरी तरह से हत्या की। बदला ले चुकने के बाद उसे डर लगा। तब वह जंगलों में भाग गया। पुलिस ने शेरसिंह की बड़ी खोज की, लेकिन कोई फ़ायदा न रहा। इस पर पुलिस ने घोषणा की कि जो शेरसिंह को पकड़ा देगा, उसे इनाम दिया जाएगा।

शेरसिंह निद्रा और अन्न-जल की परवाह किये बिना जंगलों में भटकता रहा। वह प्रति दिन एक गुप्त प्रदेश में जा छिपता।

ए. सी. सरकार, जादूगर

इसी सिलसिले में एक दिन शंकरसिंह के नेतृत्ववाले डाकुओं के दल से शेरसिंह की मुलाक़ात हो गई। डाकुओ ने उस पर शक किया कि वह पुलिस का एक गुप्तचर है और उसको पकड़ने को हुए। मगर शंकरसिंह ने उन्हें रोका और शेरसिंह को आपाद्र मस्तक एक बार देखकर कहा– "यह तो वही शेरसिंह सा लगता है, जिसकी पुलिस खोज कर रही है, इसको पकड़ानेवाले को सरकार ने दस हज़ार रुपये का इनाम घोषित किया है। इसलिए तुम लोग इसे बन्दी बनाओ।"

इसके बाद शेरसिंह को शंकरसिंह अपने अड्डे पर ले गया और अनेक प्रकार से उसकी परीक्षा करके संतुष्ट हो उसे अपने दल में मिला लिया। जल्द ही डाकुओं के नेता शंकरसिंह को मालूम हो गया कि शेरसिंह बंदूक़ चलाने में बड़ा ही प्रवीण है और उसका निशाना अचूक है। तीन महीने बीतते-बीतते शेरसिंह शंकरसिंह का प्रधान अनुचर बन गया। इसके थोड़े ही दिन बाद शंकरसिंह पुलिस का सामना करते गोली लगकर मर गया, इस पर शेरसिंह डाकुओं के दल का नेता बन गया। इसके बाद शेरसिंह ने अपने अनूचरों को बढ़िया प्रशिक्षण दिया, चांवल की घाटी में स्थित गाँवों के जमीन्दारों पर हमला बोल दिया। जमीन्दारों की जायदाद और पशुओं को लूटा। इस तरह अपनी पत्नी और पुत्र की मौत का बदला चुकाया।
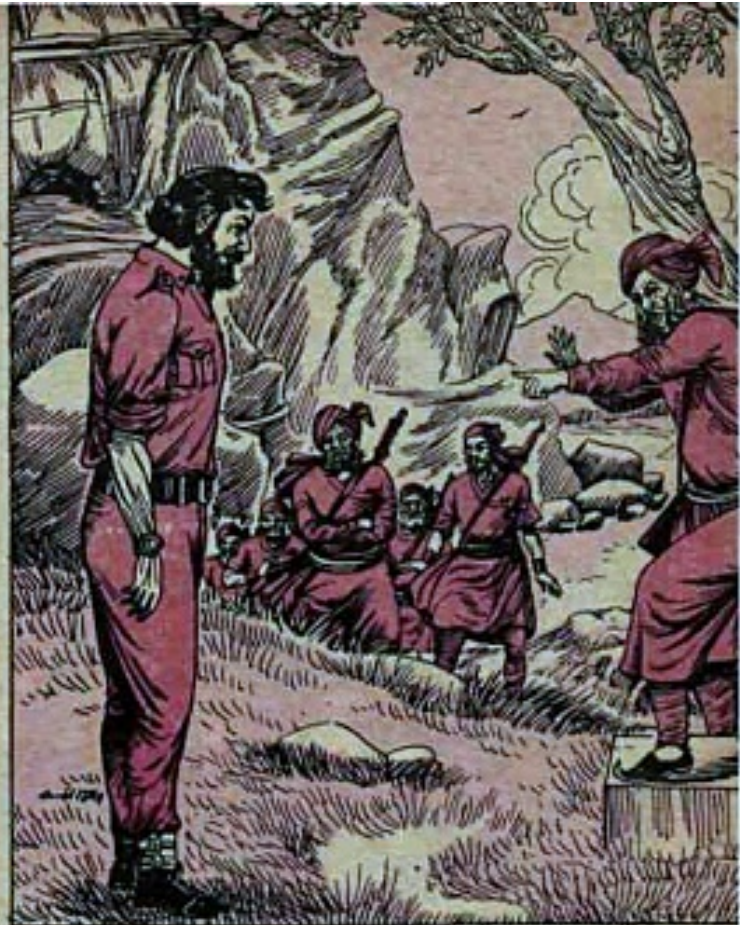
शेरसिंह का बड़ा बेटा अजितसिंह अपने गाँव से पाँच मील की दूरी पर स्थित अपनी मौसी के गाँव में पलकर बड़ा हो गया था। एक दिन शेरसिंह वहाँ आकर अजितसिंह को अपने साथ ले आया। उसका विचार था कि अपने पुत्र को भी डाकुओं के दल में शामिल करके उसे एक कुशल डाकू बनावे। अजितसिंह अपने पिता के नेतृत्व में प्रशिक्षित हो बन्दूक़ चलाने में कुशल बना। मगर जब भी वह किसी मनुष्य को अपनी बंदूक़ का निशाना बनाता उसके

हाथ थर-थर कांप उठते थे। लेकिन अपने पिता को संतुष्ट करने के लिए वह लूट-खसोट में भाग तो लेता था, किंतु उसने कभी किसी मनुष्य को अपनी गोली का शिकार नहीं बनाया। उसकी बंदूक का निशाना सदा चूक जाता था।

एक बार एक पुलिस अधिकारी के एक दल ने उस घाटी में अपना डेरा डाला जहाँ पर शेरसिंह के दल का गुप्त केन्द्र था। तत्काल ही शेरसिंह के गुप्तचरों ने उसे इस बात की सूचना दी। शेरसिंह ने उसकी प्रतिक्रिया करने के ख्याल से एक दल नियुक्त किया और उस दल का नेता अजितसिंह को बनाया। बीस कुशल डाकू हथियार लेकर घोड़ों पर सवार हो अजितसिंह के साथ चल पड़े।

डाकुओं की योजना सफल हुई। उस हमले में कई पुलिस के सिपाही मारे गये। पुलिस ने जो हथ गोले फेंके जिसके कारण दो डाकू भी मर गये। फिर भी पुलिस दल के बचे हुए सिपाही डरकर भाग गये। पुलिस के हथियार डाकुओं के हाथ लगे। आखिर पुलिस का एक अधिकारी डाकुओं के हाथ में बन्दी बना।

"छोटे सरदार! इस अधिकारी को हम अपने बड़े सरदार के पास ले जायेंगे। वे ही खुद इसका सिर काट डालेंगे।" एक डाकू ने अजितसिंह से कहा।

"इस छोटी-सी बात के लिए हमारे सरदार को तक़लीफ़ क्यों दे? मैं ही इसका काम तमाम कर देता हूँ। इसे मेरे हाथ सौंप दो।" ये शब्द कहते अधिकारी की गर्दन पकड़कर झाड़ियों के बीच अजितसिंह उसे खींच ले गया। इस पर पुलिस का अधिकारी छटपटाकर बचने को हुआ, मगर अजितसिंह की पकड़ भालू की पकड़ जैसी थी। उसने पुलिस के अधिकारी को आँख का इशारा किया और झाड़ियों के पीछे ले जाकर बोला—"सुनो, मैं तुम्हें मारने नही जा रहा हूँ। मैंने आज तक किसी की हत्या नही की है।"

इस पर पुलिस के अधिकारी ने अजितसिंह की ओर संदेह भरी दृष्टि प्रसारित की और कहा–"तुम डाकू हो! यह मैं कैसे विश्वास करूँ कि तुम हत्यारे नहीं हो? तुम्हारे साथियों ने हमारे कई सिपाहियों का वध कर डाला है। यह कहना हास्यास्पद है कि शेरसिंह के अनुचर हत्याएँ बिलकुल नहीं करते।"

"मेरी बातों पर यक़ीन करो। मैं लाचार होकर इस पेशे में आ गया हूँ। मैं तुम से भी एक अच्छा नागरिक हूँ। देरी न करके मेरे कहे अनुसार करो। मैं उस पेड़ को निशाना बनाकर बन्दूक़ चला देता हूँ। तुम ज़ोर से चीखकर औंधे मुंह लेट जाओ। मैं अपनी जांघ पर तलवार से काटकर तुम्हारी पीठ पर खून के छींटे डाल देता हूँ। मेरे अनुचर यदि इस ओर आ जायेंगे तो यही सोचेंगे कि तुम मर गये हो। इसके बाद तुम अपने घर लौट सकते हो।" अजितसिंह ने समझाया।

इसके उपरांत अजित ने जैसे पुलिस के अधिकारी से कहा था, वैसा किया और अपने दल के पास लौट आया। जब सभी डाकू उस ओर बढ़े, तब वहाँ पर मृत पुलिस अधिकारी उन्हें दिखाई दिया।

"छोटा सरदार! आपके बदन से खून निकल रहा है! क्या हुआ?" एक डाकू ने बड़ी उद्विग्नता से पूछा।

"उस दुष्ट पुलिस अधिकारी ने मुझपर अपनी ही तलवार से वार किया। फिर भी घबराने की कोई बात नहीं है। अपने केन्द्र पर पहुंचते ही मैं घाव पर पट्टी बाँध लेता हूँ।" अजित ने जवाब दिया।

* * *

"सरदारजी! आपके पुत्र ने आपके साथ दगा दिया है! जो पुलिस अधिकारी काफ़ूर हमारे हाथ लगा था, उसको प्राणों के साथ जाने दिया।" शेरसिंह के प्रधान गुप्तचर ने कहा।

"नहीं, इसने उसे मार डाला है। तुम समझ-बूझकर बात करो, समझें!" शेरसिंह ने गरजकर कहा।

"मैं ने अपनी आँखों से खुद देखा है, सरदार! अजितसिंह ने पेड़ पर गोली चलाई है, पुलिस अधिकारी पर नहीं, अजितसिंह ने काफ़ूर को औंधे मुँह मरे हुए आदमी की तरह लेट जाने को कहा और खुद अपनी जांघ चीरकर उस अधिकारी की पीठ पर खून के छींटे छिड़क दिये। आप लोग यह सोचकर खुश हैं कि वह अधिकारी मर गया है; पर वह सकुशल घर पहुँच गया है।" गुप्तचर ने कहा।

शेरसिंह का क्रोध भड़क उठा। उसने गरजकर कहा—"अजित को बुलाओ।"

अजित निर्भय आकर शेरसिंह के सामने आ खड़ा हुआ। इस पर शेरसिंह ने ललकारकर पूछा—"क्या इसका कहना सच है?"

अजितसिंह ने निश्चल भाव से अपने पिता की आँखों में देखते हुए कहा—"इसका कहना बिलकुल सत्य है सरदारजी! चाहे तो आप मेरा वध कर डालिए, मगर हत्याएँ करने कृपया मुझे न भेजिएगा। यह मुझ से नहीं हो सकता। पिताजी! कृपा करके मुझको क्षमा कर दीजिए।"

इस पर शेरसिंह ने अपने अनुचरों की ओर मुड़कर कहा—"तुम्हीं लोग बताओ, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले इस व्यक्ति को कैसी सजा देनी है? यह मेरा पुत्र ज़रूर है, पर क़ानून सभी लोगों के लिए बराबर है! तुम लोग अपना निर्णय कल सुबह तक बता दो।"

शेरसिंह जिन दिनों में फौज में था, उस वक़्त उसके घर की देखभाल करने के लिए जशपाल नामक एक बूढ़ा नौकर था। शेरसिंह जब अपने बेटे अजितसिंह को अपने साथ लाया, उस वक़्त अजित के साथ जशपाल भी आकर डाकुओं में मिल गया था। सभी डाकुओं को खाना बनाकर खिलाना उसका काम था, मगर वह लूट-खसोट में भाग नहीं लेता था। बचपन से ही अजित का पालन-पोषण जशपाल ने किया था, इसलिए उसके प्रति जशपाल के

मन में कुछ विशेष प्रेम था। अजितसिंह की भयंकर मृत्यु की कल्पना करके जशपाल कांप उठा। शेरसिंह अपने पुत्र की अपेक्षा अपने अनुचरों को ज्यादा चाहता था। शेरसिंह के यहाँ सजा यह थी कि अपराधी के पेट में जहर बुझी तलवार घुसेड़कर मारा जाता था। जशपाल इसी सजा के बारे में सोच रहा था, अचानक उसे एक पुरानी घटना याद हो उठी। जब वह जवान था, उसने एक जादूगर के यहाँ नौकरी की थी। वह जादूगर कुछ इसी प्रकार का एक अद्भुत जादू करता था। वह जादू जशपाल भी जानता था।

इस जादू के लिए एक अर्द्ध चन्द्राकृति की नली की आवश्यकता थी। इस नली को पोशाकों की ओट में आदमी की कमर में बिठाया जाता था। उस नली का एक छोर मनुष्य की नाभी के पास और दूसरा छोर रीढ़ के नीचे होता था। तलवार सीधी तथा आसानी से झुकनेवाली होनी चाहिए। तलवार की नोक को नाभी के पास टिकाकर धीरे से घुसेड़ने पर तलवार नली से होकर झुकती जायगी, यदि खून को भी दिखाना है तो किसी मुर्गी को काटकर उसका खून नली में भर करके नली के दोनों छोरों को बन्द करना चाहिए।

जशपाल ने तत्काल एक योजना बनाई, और डाकुओं को तलवार व छुरियाँ बनाकर देनेवाले लुहार के पास गया। उसकी मदद से अपने लिए आवश्यक नली तैयार कराई और सबके सोते समय उस नली को अजित की कमर में बिठा दिया। उस नली में उसने मुर्गी का खून भी भर दिया।

लुहार तथा जशपाल के बीच गहरी दोस्ती थी। क्योंकि जब सभी डाकू लूट-मार करने बाहर चले जाते थे, तब ये ही दोनों गुप्त केन्द्र में रह जाते थे।

दूसरे दिन सवेरे डाकुओं ने एक सभा बुलाकर अपना यह निर्णय दिया कि अजितसिंह को मौत की सजा देनी है।

शेरसिंह ने कहा—"हमारी रीति के अनुसार अजित का वध करो।"

इस पर जशपाल ने शेरसिंह से निवेदन किया–"सरदार! अजित मेरे हाथों में पलकर बड़ा हो गया है। मैं उसका वध अपने ही हाथों से करके उसकी जन्म भूमि में ही उसकी लाश को जला डालूंगा।"

"सजा प्राप्त व्यक्ति को अगर कोई आपत्ति न हो तो वैसा ही करो।" शेरसिंह ने रुद्ध कंठ से कहा।

जशपाल ने आँख का इशारा करते हुए पूछा–"अजित! तुम्हारा क्या विचार है?"

"जशपाल! मेरी अंतिम इच्छा भी यही है।" अजित ने उत्तर दिया।

अजित हाथ बाँधे आगे आकर खड़ा हो गया। जशपाल ने तलवार लेकर उसे जहर से भरे पात्र में डुबो दिया। बाक़ी डाकू संतुष्ट होकर दूर हट गये।

जशपाल चिल्ला उठा–"जय भवानी की।" फिर तलवार की नोक अजित के पेट पर टिकाकर जोर से घुसेड़ दिया। तलवार की नोक जब अजित की पीठ में से बाहर निकली, तब उसके साथ खून भी बाहर निकल आया। दूसरे ही क्षण अजित नीचे गिरकर थोड़ी देर छटपटाया और फिर अचेत हो गया। शेरसिंह अपने हाथों से आँखें बंद कीं।

जशपाल ने तलवार खींचकर म्यान में रख दी। इसके बाद वह अजित को कंधे पर उठाकर घोड़े पर चल पड़ा। वह पहाड़ से नीचे उतर ही रहा था कि पुलिस ने उसको घेर लिया। इस पर जशपाल ने अजित को नीचे उतारा। दोनों पुलिस के हाथों में बन्दी हो गये।

इसके बाद डाकुओं तथा पुलिस के बीच भयंकर लड़ाई हुई। उस लड़ाई में बन्दूक़ की गोली खाकर शेरसिंह मर गया। उसके अनुचरों में से कई लोग मर गये और बाक़ी बन्दी हुए। पुलिस अधिकारी काफ़ूर की सहायता से अजित को सिर्फ़ पाँच साल की कारागार की सजा हुई। पाँच साल के बाद उसने शादी की और जशपाल के साथ वह भी उत्तम नागरिक बनकर आराम से जीने लगा।

एक सिक्के का उधार

विजयनगर मे एक ब्राह्मण था। वह बड़ा ही बुद्धिमान था। एक दिन उसने एक धनी के यहां जाकर एक सोने के सिक्के का कर्ज मांगा। धनी ने दस प्रतिशत ब्याज पर उधार देने को मान लिया और उधार की निशानी के लिए कोई चीज गिरवी रखने को कहा।

"महाशय, राजा ने मुझे यह हार पुरस्कार में दिया है। मैं समझता हूं कि गिरवी के लिए यह चीज पर्याप्त है।" यों कहते ब्राह्मण ने मोतियों का एक हार धनी के हाथ दिया। उसका मूल्य कम से कम एक हजार सोने के सिक्के होगा। धनी ने हार को लेकर ब्राह्मण को गिरवी की रसीद दी और उधार में एक सिक्का दिया।

उस दिन से हर साल ब्राह्मण समय पर आता और दसवां हिस्सा ब्याज चुकाकर चला जाता। इस तरह पांच साल बीत गये। तब धनी ने ब्राह्मण से पूछा–"महाशय, आप पांच साल से ब्याज चुका रहे हैं, क्या मूल धन चुकाने के लिए आप के पास एक सिक्का नहीं है?" ब्राह्मण ने हँसकर उत्तर दिया–"वैसे मैं कोई धनी नहीं हूं। मोतियों का यह हार सुरक्षित रखने के लिए मेरे घर तिजोरी भी नहीं है, तिजोरी खरीदने के लिए मेरे पास धन भी नहीं है। इसलिए थोडे से खर्च पर मैंने यह हार आप के यहां सुरक्षित रूप से रख छोड़ा है।"

घी के बड़े

एक गाँव में एक ब्राह्मण-दंपति था। एक दिन उस ब्राह्मण का साला और उसकी पत्नी उन्हें देखने आये।

ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ और अपनी पत्नी से बोला-"अरी सुनो तो! तुम्हारा भाई बहुत दिनों बाद परिवार के साथ आया है। उन्हें कोई बढ़िया मिष्टान्न बनाकर खिलाओ!"

"मेरे भाई को घी के बड़े बहुत ही पसंद हैं। लेकिन अगर हम अपने घर में घी के बड़े बनाते हैं, उसकी गंध पाकर हमारे जान-पहचान के सभी लोग आ धमकेंगे! ऐसी हालत में हमारी मेहनत और खर्च के सिवाय खाने को हमें थोड़ा भी न बचेगा!" ब्राह्मण की पत्नी ने असली स्थिति बताई।

इस पर ब्राह्मण ने एक अच्छा उपाय सोचा। दिन के वक़्त घी के बड़े बनाये जायें तो ज़रूर जान-पहचान के लोग आ धमकेंगे। इसलिए उस ब्राह्मण-दंपति ने अपने जान-पहचान के लोगों से बताया कि वे किसी रिश्तेदार के गाँव जा रहे हैं, दर्वाजे पर ताला लगाकर चल पड़े, फिर रात को घर लौटकर पिछवाड़े के रास्ते अंदर घुस पड़े।

ब्राह्मण की पत्नी ने घी के बड़े बनाना शुरू किया। घी के बड़ों की गंध आखिर किसी एक पड़ोसी को लग ही गई। उसने सोचा कि आधी रात के वक्त घी के बडों की यह गंध कैसी है! यह सोचकर वह अपने घर से बाहर आया। देखता क्या है, वह गध-सामने के घरवाले ब्राह्मण के घर से ही आ रही है!

ब्राह्मण तो दर्वाजे पर ताला लगाकर चला गया है। घर से घी के बड़ों की गंध आ रही है! यह रहस्य उसकी समझ में न

कमल प्रसाद नारंग

आया। उसने कई लोगों के पास जाकर यह बात बताई। फिर क्या था, ब्राह्मण के घर के सामने एक बड़ी भीड़ लग गई। भीतर से न केवल घी के बड़ों की गंध आ रही थी, बल्कि चूड़ियों की आवाज़ भी सुनाई दे रही थी।

इसका रहस्य जानने के ख्याल से कुछ लोगों ने जोर-जोर से किवाड़ों पर दस्तक देते पुकारना शुरू किया–"अन्दर कौन है? सच-सच बता दो! वरना तुम्हारी खाल उधेड़ देंगे!"

यह चिल्लाहट सुनकर भीतर के लोग काँप उठे। आखिर वह तो गाँव ठहरा। लोग तिल को ताड़ बना लेते हैं! इस पर ब्राह्मण की पत्नी सोचने लगी–'भगवान! हमारे बचने का उपाय ही क्या है? कोई उपाय न किया जाय तो ये लोग किवाड़ तोड़ बैठेंगे। कमबख्त घी के बड़ों की वजह से हम लोग अपने ही घर में चोर ठहराये गये!'

उस हालत में ब्राह्मण के साले तथा उसकी पत्नी ने एक उपाय किया। उसके अनुसार दोनों औरतों ने किवाड़ के पास जाकर चूड़ियों की आवाज़ की।

इसके दूसरे ही क्षण बाहर का कोलाहल बंद हुआ। बाहर के लोग कान लगाकर यह आवाज़ ध्यान से सुनने लगे। उन्हें यह आवाज़ बड़ी विचित्र-सी लगी।

ब्राह्मण के साले की पत्नी ने ऊँची आवाज़ में कहा–"भगवान! मैं तो

महा लक्ष्मी हूँ! मेरे लिए इस ब्राह्मण का घर अच्छा नहीं लग रहा है। वैकुंठ से चले आने के बाद मेरे लिए कोई अच्छा स्थान ही कहीं नहीं मिल रहा है!"

इस पर उसके पति ने पूछा–"देवी! तब तो तुम्हीं बताओ, हम क्या करें? तुम जहाँ चाहो, वहीं पर जायेंगे।"

"इस गाँव के मुखिये के घर जायेंगे। उनका घर हमारे निवास के लिए ज्यादा उत्तम होगा!" पत्नी ने जवाब दिया।

"अच्छी बात है! ऐसा ही करेंगे, देवी! तुम्हारी जो इच्छा!" पति ने स्वीकृति दी।

बाहर से लोगों ने यह सारा वार्तालाप सुना। उनमें गाँव का मुखिया भी शामिल था। सब लोग प्रत्यक्ष लक्ष्मीदेवी के दर्शन करने के लिए मुखिये के घर दौड़ पड़े।

मुखिये की पत्नी लोगों का कोलाहल सुनकर अचरज में आ गई। सारी बातें सुनने के बाद उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। उसने तत्काल सारे घर को लिपवा-पुतवाकर रंगेली कराई। पड़ोसी गाँव से पुरोहित ने आकर ठाठ से लक्ष्मी-पूजन किया, पुरस्कार लेकर चला गया।

गाँव की जनता यह सोचकर मुखिये के घर के पास ही पड़ी रही कि महालक्ष्मीजी कब पधारेंगी और कब उनके दर्शन होंगे! मुखिये की पत्नी ने सभी लोगों को मिष्टान्नों के साथ बढ़िया दावत खिलाई। लोग बड़ी देर तक लक्ष्मी का इंतजार कर रहे थे, पर किसी को भी लक्ष्मीदेवी के दर्शन नहीं हुए।

इस बीच ब्राह्मण-दंपति ने खाना समाप्त किया और बाहर चले आये। लोगों की भीड़ जब छंट रही थी, तब वे इस प्रकार का अभिनय करते अपने घर लौट आये, मानो पड़ोसी गाँव से लौट रहे हैं।

गाँव का मुखिया तथा उसकी पत्नी यह सोचकर अत्यंत प्रसन्न हुए कि लक्ष्मीदेवी ने अदृश्य रूप में आकर उनके घर मे अपना स्थिर निवास बना लिया है।
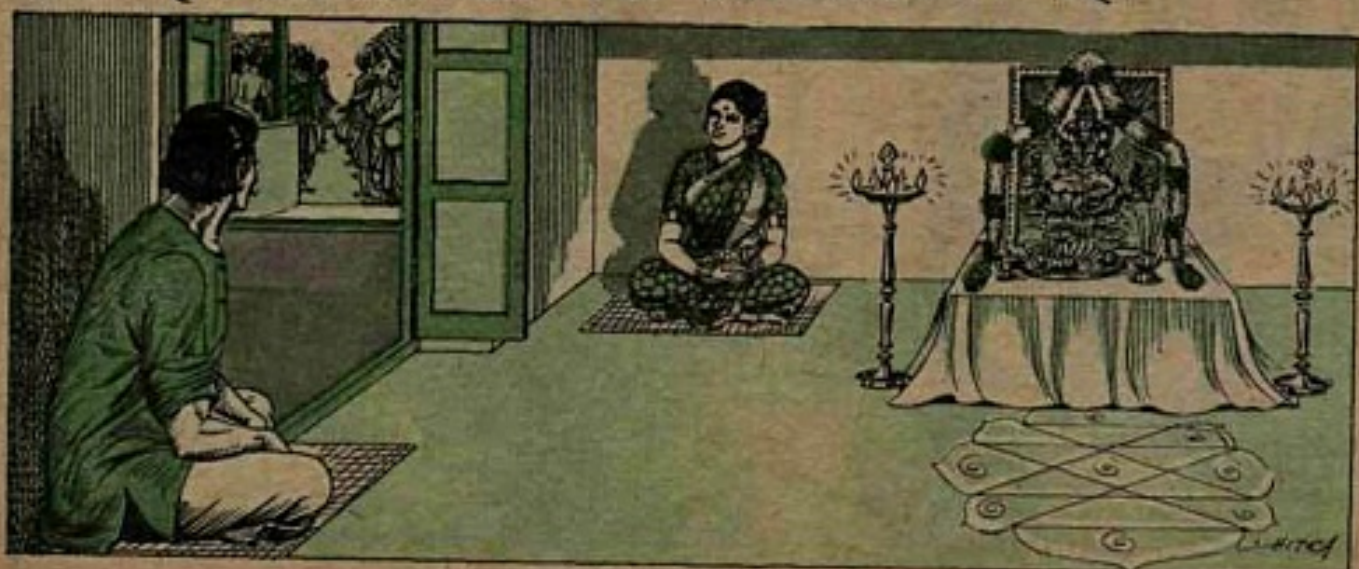
ग़लत फ़हमी

एक गाँव में सोमभद्र नामक एक युवक था। उसके बचपन में ही उसकी माँ का स्वर्गवास हो गया था। जब वह जवान बना, तभी उसके पिता का देहांत हो गया। इसके थोड़े दिन बाद सोमभद्र ने अपने निकट के गाँव की एक सुंदर तथा सुशील कन्या के साथ ठाठ से विवाह भी कर लिया।

सोमभद्र की पत्नी का नाम कांतामणि था। वह देखने में बड़ी सुंदर थी। सोमभद्र ने सोचा कि इस बात का पता लगाया जाय कि कांतामणि अपने रूप के अनुरूप गुण भी रखती है या नहीं। इसी उद्देश्य से उसने अपनी पत्नी से पूछा—"यह बता सकती हो कि हमारे विवाह के पीछे कितना धन खर्च हो गया है?"

"दो सेर चावल!" कांतामणि ने संक्षेप में उत्तर दिया।

यह जवाब सुनकर सोमभद्र एक दम नाराज़ हो उठा। उसने गरजकर कहा—"मैंने बहुत सारा धन ख़र्च करके ठाठ से तुम्हारे साथ विवाह किया तो तुम बताती हो कि मैंने सिर्फ़ दो सेर चावल विवाह के पीछे खर्च किये हैं? क्या मैं तुम्हारी दृष्टि में एक दरिद्र जैसा लगता हूँ? तुम जैसी बेवकूफ़ के लिए इस घर में कोई स्थान नहीं है! तुम तुरंत यहाँ से अपने मायके चली जाओ।"

अपने पति के क्रोध को देख कांतामणि एक दम चकित रह गई। मगर वह अत्यंत भद्र स्वभाव की थी, इसलिए मौन रह गई।

सोमभद्र अपनी पत्नी को ससुराल में छोड़ आने के लिए घर से निकल पड़ा। आगे आगे पति और पीछे पत्नी चलने लगी।

सुधा चतुर्वेदी

थोड़ी दूर जाने पर एक खेत में तीन-चार आदमी गाड़ी पर धान के बोरे लादते उन्हें दिखाई पड़े।

कांतामणि ने उन लोगों से पूछा–"यह धान पिछले साल का है या इस साल का?"

अपनी पत्नी के मुँह से यह बेतुकी सवाल सुनकर सोमभद्र खीझ उठा और आगे बढ़ा।

थोड़ी दूर और जाने पर चार आदमी शव को ले जाते दिखाई पड़े। उनके पीछे मृत व्यक्ति के रिश्तेदार भी थे। कांतामणि ने उन लोगों से पूछा–"क्या यह एक ही लाश है या सौ लाशें?"

ये बातें सुनने पर सोमभद्र को लगा कि उसकी पत्नी का दिमाग बिलकुल खराब हो गया है। उसने अपने मन में सोचा कि ऐसी पागल पत्नी को त्याग देने में कोई बुराई नहीं है।

बहुत दूर चलने के बाद वे थक गये थे, इसलिए दोनों एक पेड़ की छाया में बैठ गये। रास्ते से थोड़ी दूर पर एक कौआ उछलते-कूदते बार-बार जमीन पर चोंच मारते दिखाई दिया।

कांतामणि ने थोड़ी देर कौए की तरफ़ ध्यान से देखा और अपने पति से कहा–"यदि वहाँ पर खोदोगे तो तुम्हें गड़ा हुआ खजाना मिल सकता है।"

सोमभद्र ने सोचा कि यह भी उसकी पत्नी का पागलपन है। मगर कांतामणि उठकर उस जगह पहुँची, उसकी जांच

करने पर उसे लगा कि वहाँ पर खोदकर पुनः गड्ढे को भर दिया गया है। उसने वहाँ की मिट्टी खोदकर देखा। हाथ भर गहराई में उसे एक घड़ा तथा उसके ढक्कन में कोई खाने की चीज़ें तथा उन पर ढके पत्ते भी दिखाई दिये।

उस घड़े में सोने के सिक्के भरे हुए थे। इसे देख सोमभद्र विस्मय में आ गया। उसने सोचा कि कांतामणि शायद बड़ी बुद्धिमती होगी।

उसने अपनी पत्नी से पूछा—"तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि यहाँ पर सोना गड़ा हुआ है?"

"मुझे इसलिए संदेह हुआ कि कौआ मिट्टी पर चोंच क्यों मारता है? जमीन के नीचे कोई खाना होगा, तभी तो वह ऐसा कर सकता है। कोई खाना क्यों गाड़ देता है? यदि कोई क़ीमती वस्तु गाड़ देने पर उसकी रक्षा के हेतु भूतों का सहारा लेने के वास्ते ही लोग अकसर बलि देते हैं।" कांतामणि ने समझाया।

सोमभद्र को आखिर कांतामणि की कुशागबुद्धि को मानना पड़ा। लेकिन ऐसी बुद्धिमान औरत ने इसके पूर्व अंट-संट सवाल क्यों कर दिए? इस संदेह को दूर करने के ख्याल से सोमभद्र ने पूछा—"तुमने जनाजा ले जानेवालों से यह क्यों पूछा कि उस पर एक लाश है या सौ लाशें? जनाजे पर एक ही तो लाश रहती है?"

"मृत व्यक्ति अगर अपने जीवन काल में दूसरों का मददगार रहा हो तो वह सौ लोगों की मृत्यु के बराबर का होता है! यदि वह सिर्फ़ अपने लिए ज़िंदगी जिया हो तो उसकी मृत्यु एक ही की मृत्यु के बराबर होती है। मेरे पूछने का मतलब यही था कि मृत व्यक्ति परोपकारी है या नहीं?" कांतामणि ने स्पष्ट किया।

सोमभद्र को मानना पड़ा कि उसकी पत्नी की बातों में सचाई है।

उसने अपनी पत्नी से फिर पूछा– "तुमने खेत के धान को देखते हुए भी यह क्यों पूछा कि यह फ़सल इस साल की है या पिछले साल की?"

"उधार और कर चुकाने के बाद यदि फ़सल बच जाती है तो वह पिछले साल की फ़सल कहलाती है। ऐसी हालत में वह सारा अनाज खेत के मालिक का होता है! उसी में से उधार तथा कर चुकाना पड़े तो खेत के मालिक को थोड़ा ही अनाज बचता है। मैंने यह जानने के लिए पूछा कि वह सारा धान खेत के मालिक के घर पहुँचेगा या नहीं?"

कांतामणि के समझाने पर सोमभद्र को मानना पड़ा कि उसकी औरत का सवाल बेतुकी नहीं है।

"ये जवाब तो सही हैं, पर हमारी शादी का खर्च तुमने दो ही सेर चावल क्यों बताया? जब कि मैंने कई लोगों को दावत दी?" सोमभद्र ने फिर पूछा।

"हो सकता है कि आप अपना बड़प्पन दर्शाने के लिए जितना भी खर्च किया हो, पर वह खर्च वास्तव में विवाह का सही खर्च नहीं है! आप अपने प्रिय जनों के लिए प्रेम और स्नेह के साथ जो खर्च करते हैं, वही सच्चा खर्च होता है। उसे मैंने सिर्फ़ दो सेर चावल बताया है।" कांतामणि ने अपने मन की बात स्पष्ट कर दी।

यह उत्तर पाकर सोमभद्र निरुत्तर हो गया। अपनी पत्नी से क्षमा माँगकर घर लौट आया। उस दिन से वह अपनी पत्नी के प्रति आदरपूर्ण व्यवहार करने लगा।

हार-जीत

प्राचीन काल की बात है। कलिंग राजा के एक सुंदर कन्या थी। वह दूसरों को बड़ी आसानी से दगा देती थी।

राजकुमारी के युक्त वयस्का के होते ही राजा ने उसका विवाह करना चाहा। मगर उसने राजा के सामने एक शर्त रखी कि वह उसी युवक के साथ शादी करेगी जो उसे धोखा दे सकता है और उसके धोखे को प्रकट कर सकता है! राजा अपनी पुत्री को हद से ज्यादा प्यार करता था, इस कारण राजा ने राजकुमारी की इच्छा के अनुसार यों ढिंढोरा पिटवाया– "कलिंग राजकुमारी के साथ जो युवक विवाह करना चाहता है, वह राजकुमारी के धोखे को प्रकट करे और उसे सफलता पूर्वक धोखा दे। ऐसे ही युवक के साथ वह विवाह करेगी।" यह ढिंढोरा सुनकर चारों तरफ के अनेक राजकुमार राजकुमारी के साथ विवाह करने आ पहुंचे।

मगर राजकुमारी ने उन राजकुमारों को अनेक प्रकार सें धोखा देकर अपमानित किया और वापस भेज दिया। वह सबको एक ही प्रकार से धोखा न देती थी, तरह-तरह से धोखा देती थी। इस कारण किसी को यह संभव न हुआ कि वह कैसे धोखा देती है।

ढिंढोरे की बात सुनकर अंगदेश का राजकुमार कलिंग देश की राजकुमारी के साथ विवाह करने के ख्याल से अपने अंगरक्षक को साथ ले कलिंग आ पहुंचा और एक सराय में ठहर गया। उसके आगमन का समाचार गुप्तचरों के द्वारा राजकुमारी को मालूम हो गया।

दूसरे दिन अंग देश का राजकुमार अपने अंगरक्षक को साथ ले राजमहल में आया और अंत:पुर में खबर भेज दी कि

शरदकुमार मल्होत्रा

वह राजकुमारी से मिलने आया है। राजकुमारी ने उन दोनों को अपने कक्ष में बुलवा लिया। जब वे राजकुमारी के कमरे में पहुँचे, तब उसके साथ राजकुमारी की एक परिचारिका मात्र थी।

परिचारिका ने अतिथियों को सादर बिठाया और राजकुमार से पूछा–"आप क्या हमारी राजकुमारी को हराने आये हैं, या प्रेम करके विवाह करने आये हैं?"

इस पर अंगरक्षक ने उत्तर दिया–"हमारे राजकुमार तुम्हारी राजकुमारी के साथ हृदय पूर्वक प्रणय करके विवाह करने पधारे हैं। इसलिए वे जो भी परीक्षाएँ लेंगी, उन्हें देने को वे तैयार हैं!"

"हमारी राजकुमारी किसी भी प्रकार की परीक्षाएँ नहीं लेतीं। आप केवल उनके हाथ में हाथ डालकर हृदय पूर्वक उनके साथ प्यार करने का भाव व्यक्त कीजिए!" परिचारिका ने कहा।

राजकुमार ने राजकुमारी के निकट जाकर उसके हाथ में हाथ डाला। दूसरे ही क्षण परिचारिका खिलखिलाकर हंस पड़ी। इसके बाद विजय के घमण्ड में आकर तब तक परिचारिका का अभिनय करनेवाली राजकुमारी बोली–"राजकुमार! आप धोखा खा गये! अब अपने रास्ते आप लौट सकते हैं! अब तक आप जिसे राजकुमारी समझ रहे थे, वह मेरी परिचारिका है। वास्तव मे राजकुमारी मैं हूँ।"

इस पर अंगरक्षक ने राजकुमारी से कहा–"धोखा तो आपने खाया है, मैंने नहीं! अब तक आप मेरे अंगरक्षक से बात कर रहीं थीं। वास्तव में अंगदेश का राजकुमार मैं हूँ। मैंने इस प्रकार के धोखे की कल्पना करके अपना यह वेष बना लिया है।"

कलिंग की राजकुमारी अंगदेश के राजकुमार का उत्तर सुनकर लजा गई और उसने अपनी हार स्वीकार कर ली। इसके बाद उन दोनों का वैभवपूर्वक विवाह हुआ।

हनुमान ने सीताजी का स्मरण करके प्रणाम किया, तब यों कहा :

"आप सब ने महेंद्र पर्वत से मेरे उड़ते हुए देखा है न? मैं जब आकाश में उड़ रहा था, तब एक सुंदर स्वर्ण शिखर मेरे मार्ग को रोकते हुए ऊपर उठा। मैंने उसे तोड़ना चाहा, पर उसने अत्यंत वात्सल्य पूर्वक मेरा परामर्श करके बताया कि मेरे पिता वायुदेव ने इंद्र से उसकी रक्षा की है और उसका नाम मैनाक है। उसने मुझे यह भी बताया कि रामचन्द्रजी के कार्य पर जानेवाले मेरी सहायता भी वह करेगा। मैं अपनी शीघ्रता का परिचय देकर मैनाक से विदा ले आगे बढ़ा। इसके बाद सर्पमाता सुरसा मुझे निगलने के ख्याल से सामने आई। मैं ने उसे समझाया कि मैं अत्यंत पवित्र कार्य पर जा रहा हूँ, और उस कार्य के समाप्त होते ही मैं उसका आहार बन जाऊँगा। पर उसने मेरी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। मैं एक इंच के परिमाण में अपनी देह को लघु बनाकर उसके मुँह में घुस पड़ा और दूसरे ही क्षण बाहर चला आया। तब सुरसा ने मुझे आशीर्वाद देकर विदा किया। थोड़ी दूर और आगे बढ़ने पर मेरी छाया को किसी चीज ने ग्रस लिया। वह समुद्र में रहनेवाली एक भयंकर राक्षसी थी। मैं विवश होकर अत्यंत लघु रूप में उसके भीतर पहुँचा। उसके कलेजे को फाड़कर मैं पुनः उसके भीतर से बाहर निकल

१७. मधुवन का विध्वंस

आया। मैंने सुना कि उस राक्षसी का नाम सिहिका है।

"इसके बाद मैं लंका में पहुँचा और और गुप्त रूप में लंका नगर में प्रवेश किया। वहाँ पर लंका एक बड़ी राक्षसी के रूप में मेरे सामने खड़ी हो गई। मैंने उसको पराजित किया और सीताजी की खोज करने लगा। रावण के महल में सीताजी दिखाई न दी। वे तो मुझे एक बड़े उद्यान वन में दिखाई दीं। वह कृशगात्री हो गई थीं। उनके केश जटाओं के रूप में बदल गये थे और वे राक्षस नारियों के बीच एक शोक की देवी के रूप में मुझे दिखाई दीं। उन्हें देखते ही मुझे एक ओर जहाँ प्रसन्नता हुई औग दूसरी ओर अत्यंत दुख भी हुआ।"

इस प्रकार हनुमान ने सारा वृत्तांत सविस्तार वानरों को आदि से अंत तक सुनाया। अंत में उसने यों कहा:

"सीताजी महान पतिव्रता हैं। उन्हें देखते ही उनके प्रति मेरे मन में भक्ति पैदा हो गई। वे तो एक वीर पत्नी हैं। उनका आग्रह है कि उनके पति श्रीरामचन्द्र ही रावण का वध करे। मैं आप लोगों से एक बात कहने आया हूँ। क्या हम लोग रावण का वध कर सकते हैं? मेरा विचार है कि रावण का वध करके सीताजी को साथ ले हम लोगों का श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण के यहाँ जाना उचित होगा। वास्तव में मैं ही रावण का वध कर सकता हूँ। रावण का पुत्र मेघनाद के द्वारा प्रयोग किये जानेवाले अस्त्र मेरा कुछ भी बिगाड़ नही सकते! यदि आप लोग आज्ञा दे तो मैं स्वयं मेघनाद का वध कर बैठूंगा। जाँबवान तथा अंगद अकेले ही सभी राक्षसो का वध कर सकते हैं। किसी के भी द्वारा मृत्यु न पाने के वर प्राप्त मैन्द तथा द्विविद तो हमारे साथ हैं ही? अब आप ही लोग बताइये कि आप लोगों का क्या विचार है?"

अंगद ने हनुमान की बातों को तत्काल मानकर यों कहा—"तुम्हारा कहना

बिलकुल सही है! सीताजी को देखने के बाद उन्हें साथ लिये बिना रामचन्द्रजी के पास जाना बड़ी भारी गलती होगी। हम श्रीरामचन्द्रजी से यह कैसे कह सकते हैं कि हमने सीताजी को देखा है, पर साथ नहीं लाये हैं। हनुमान ने प्रायः सभी प्रमुख राक्षसों का वध किया है, अब हमारे लिए बचा ही क्या है? सीताजी को अपने साथ लेते जायेंगे।"

इस पर जांबवान ने अंगद से कहा– "तुम्हारा कहना सही है! परंतु हमें तो श्रीरामचन्द्रजी के आदेश का पालन करना होगा। हम वैसा ही करेंगे।"

रामचन्द्रजी ने वानरों को सीताजी का अन्वेषण करने का आदेश दिया था, पर सीताजी को साथ लाने की बात कभी न कही थी। हनुमान ने भी स्वयं कहा है कि सीताजी भी उनके साथ चलने को तैयार नहीं हैं। आखिर सबने जांबवान की सलाह को मान लिया। अब शीघ्र ही उन्हें श्रीरामचन्द्रजी के यहाँ पहुंचकर उन्हें यह शुभ समाचार देना शेष रह गया था। सभी वानर आकाश-पथ में रवाना होकर पृथ्वी का नंदनवन कहे जानेवाले मधुवन में पहुँचे। मधुवन की रक्षा करने के लिए सुग्रीव ने अपने मामा दधिमुख को नियुक्त किया था।

मधुवन में पहुँचते ही वानरों ने अंगद से सुरापान करने की अनुमति माँगी। अंगद ने स्वीकृति दी। सीताजी के दर्शन होने की खुशी में सब खूब पी गये। एक दूसरे को और पीने का प्रोत्साहन देते हुए नृत्य करने लगे। कुछ लोग पागलों की भाँति हँस पड़े। कुछ लोग बेहोशी की हालत में गिर पड़े। कुछ लोग दौड़ने लगे। कुछ लोग उछल-कूद करने लगे। कुछ लोग चिल्लाने लगे। कुछ लोग दल बाँधकर एक दूसरे की भुजाएँ पकड़कर नाचने लगे। कुछ लोग अपने जीवन के रहस्य खोलने लगे। कुछ लोग गाने लगे तो कुछ एक-दूसरे पर गिरकर लोटने लगे। उन सब में
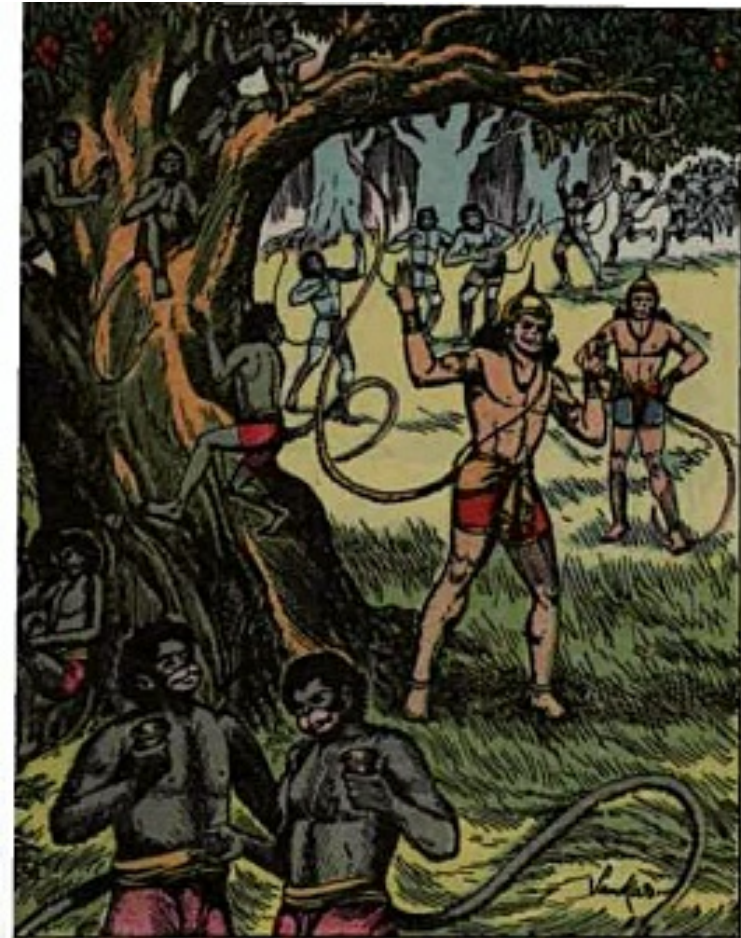
एक भी व्यक्ति न था जो अपना होश-हवास खो न बैठा हो!

वानरों ने न केवल वन का सारा मधु पी डाला, बल्कि वहाँ के वृक्षों को भी गिराने लगे और तोड़-फोड़ करने लगे। इसे देख दधिमुख क्रोध में आया और सभी वानरों को उस वन से भाग जाने को कहा। पर किसी ने उसकी बात पर ध्यान न दिया। उसने समझा-बुझाकर सावधान किया, परंतु वे सब उस पर टूट पड़े। उसको खरोंच कर, नोचकर अनेक प्रकार से तंग करने लगे।

हनुमान ने वानरों को उकसाकर कहा— "तुम लोग खूब पी जाओ, देखूँगा कि हमें कौन रोकता है?"

इस पर नशे में स्थित अंगद ने कहा— "हनुमान के कहने पर मैं बुरे से बुरा काम भी कर सकता हूँ, ऐसी हालत में अच्छा काम करने के लिए कहे तो क्यों नहीं करूँगा?"

अंगद की बातों पर वानर सब हर्षित हुए। उन्हें रोकनेवाले पहरेदारों को मार-पीटकर मधु का सेवन करते पेड़ों के सभी फल खा गये। उन्हें रोकनेवाला कोई न था। कुल मिलाकर मधुवन ध्वस्त हो गया।

दधिमुख इस सर्वनाश को देख चुप नहीं रह सका। वह अपनी सेना को लेकर वानरों के साथ युद्ध करने आया। दधिमुख अंगद का नाना था। इस बात का भी ख्याल किये बिना उसने दधिमुख को खूब पीटा। आखिर लाचार हो दधिमुख अपने अनुचरों को साथ ले सुग्रीव के यहाँ पहुँचा।

दधिमुख आकर जब सुग्रीव के पैरों पर गिर पड़ा तब सुग्रीव यह सोचकर डर गया कि न मालूम कैसा उपद्रव आ पड़ा है! उसने सांत्वना देते हुए कहा—"मामाजी! उठ जाओ। यह तुम क्या करते हो? मेरे पैरों पर क्यों गिरते हो? तुम्हें किसी बात का डर नहीं है! क्या हुआ है? बता दो? मधुवन में कोई उपद्रव तो नहीं हो गया है न?"

"राजन! तुम्हारे पिता ऋक्षराज तथा तुम्हारे शासन काल में भी किसी ने जो

साहस नहीं किया, वह अन्याय आज मधुवन में हो गया है। अंगद आदि ने मधुवन में प्रवेश करके पहरेदारों को मार भगाया। चखकर मधु पीकर बाक़ी फेंक दिया। आखिर उन्हें तुम्हारा भी डर नहीं रहा।" दधिमुख ने सारा वृत्तांत सुनाया।

दधिमुख का सुग्रीव के पास आना और रामचन्द्र तथा लक्ष्मण के यहां भी उसके साथ आये देख लक्ष्मण की समझ में न आया कि दधिमुख दुखी क्यों है? उसने सुग्रीव से पूछा–"सुग्रीव, यह क्या कह रहा है?"
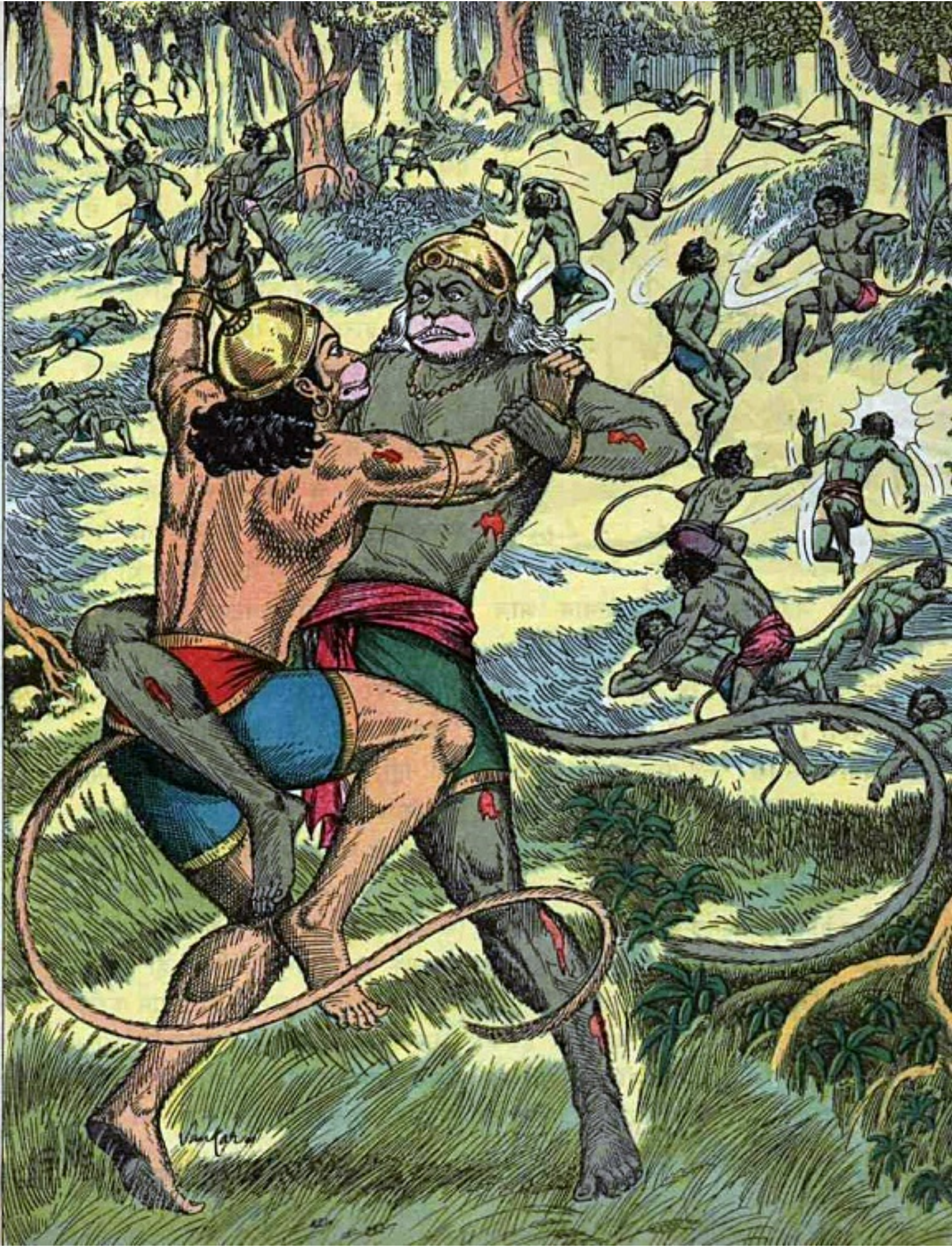
सुग्रीव ने लक्ष्मण से बताया–"हमने सीताजी की खोज में दक्षिणी दिशा में जिन वानरों को भेजा, वे मधुवन में पहुंचकर सुरापान करके मनमाना व्यवहार कर रहे हैं। उन लोगों ने अवश्य सीताजी को देखा होगा। वरना वे लोग मधुवन में पहुंचने का साहस न करते। उनमें से हनुमान ने निश्चय ही सीताजी का पता लगाया होगा। यह काम उसके द्वारा छोड़ अन्यों के द्वारा संभव नहीं है। जांबवान, अंगद तथा हनुमान भी मिल गये तो उन्हें पराजय कभी नहीं हो सकती। हे लक्ष्मणजी! आप भी सोचिये यदि उन लोगों ने सीताजी को न देखा हो तो कभी ऐसा व्यवहार नहीं करते। मधुवन तो मेरे पिताजी को ब्रह्मदेव ने प्रदान किया था।"

ये बातें सुन श्रीरामचन्द्रजी तथा लक्ष्मण अत्यंत प्रसन्न हुए।

इस पर सुग्रीव ने दधिमुख से कहा–"वानरों ने मधु का सेवन किया तो कोई बात नहीं, उन लोगों ने काम साध लिया है, इसलिए मैं उन्हें क्षमा कर सकता हूं। परंतु हमसे श्रीरामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी इस बात को जानने का कुतूहल रखते हैं कि वे कैसे यह कार्य संपन्न करके आये हैं?"

इसके बाद दधिमुख निश्चित हो सुग्रीव, श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण को प्रणाम करके मधुवन को लौट गया और अंगद से बोला–"अंगद, तुम इस बात पर नाराज़ मत होओ कि मेरे अनुचरों ने तुम लोगों को रोक

दिया ' तुम तो युवराज हो। इस मधुवन प तुम्हारा भी पूर्ण अधिकार है। हमारे द्वारा अपराध हो गया है। हमें क्षमा कर दो। तुम सबके आगमन का समाचार सुनकर सुग्रीव अत्यंत प्रसन्न हो उठे हैं। तुम सबको शीघ्र उनके यहाँ भेजने का मुझे आदेश मिला है।"

इस पर अंगद ने वानरों से कहा—"भाइयो, लगता है कि हमारे यहाँ पर पहुंचने का समाचार रामचन्द्रजी को मिल गया है। अब हमारा विलंब करना उचित न होगा। सब लोग मधु पीकर अपनी थकावट को मिटा चुके हैं, अब हमारे लिए यहाँ पर काम ही क्या है?"

वानर सब वहाँ से निकलने के लिए तैयार बैठे थे। अंगद आदेश भले ही न दे, पर उनकी सलाह भी उन सब के लिए आदेश के बराबर है। अंगद ज्यों ही आकाश में उड़े, त्यों ही बाक़ी सभी वानर उठ खड़े हुए। वे सब मेघों की भाँति गर्जन करते सुग्रीव से मिलने निकल पड़े।

उस समय सुग्रीव रामचन्द्रजी से कह रहा था—"इसमें जरा भी सदेह नहीं कि वानरों ने सीताजी के दर्शन किये हैं। वरना वे लोग मेरी दी हुई अवधि बीत जाने पर लौटकर नहीं आते। अंगद यह कार्य पूरा किये बिना मुझसे मिल ही नहीं
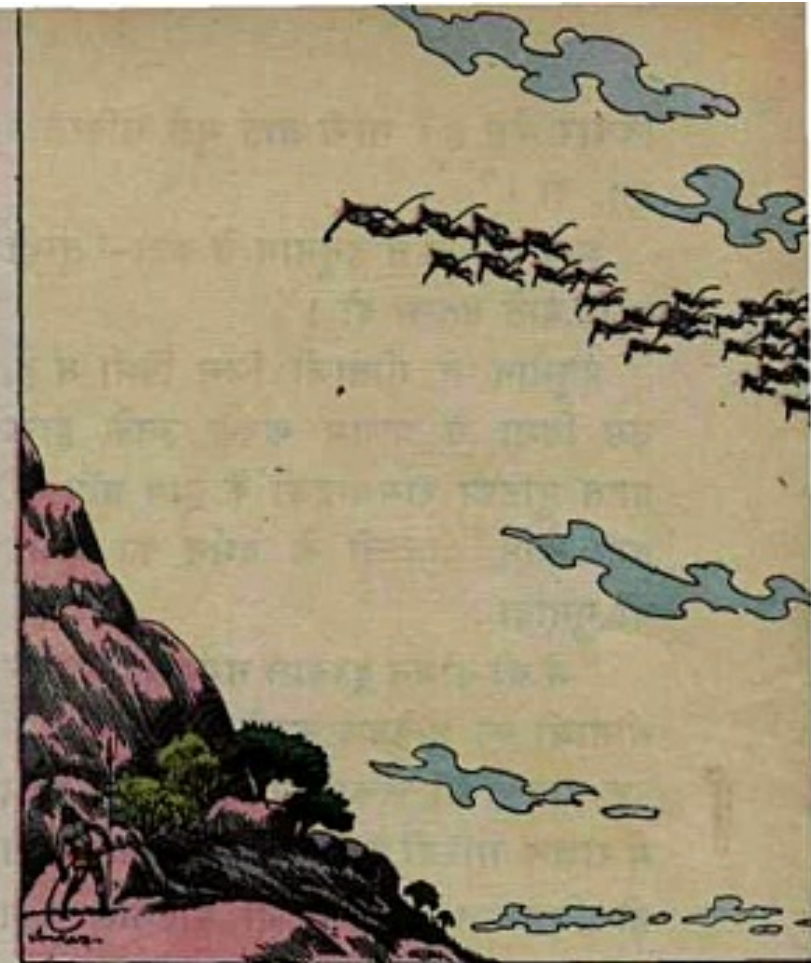
सकता। साथ ही वह मधुवन में ऐसा व्यवहार कभी न करता। अब आप यह मान सकते हैं कि सीताजी का पता चल गया है। यह समझ लीजिए कि आप का दुख दूर हो गया है।"

उसी समय वानर आसमान में उड़ते सिंहनाद करने लगे। इसके बाद कुछ ही क्षणों मे वानर सब सुग्रीव के सामने आ उतरे। हनुमान ने श्रीरामचन्द्रजी के समक्ष साष्टांग प्रणाम करके कहा—"मैंने सीताजी को देखा है। वे सकुशल हैं।" रामचन्द्रजी ने उसकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि प्रसारित की।

रामचन्द्रजी ने वानरों से पूछा—"वानरो, सीताजी कहाँ पर हैं? मेरे प्रति उनके

विचार कैसे हैं? सारी बातें मुझे सविस्तार सुना दो।"

अन्य वानरों ने हनुमान से कहा–"तुम्हीं सारी बातें बतला दो।"

हनुमान ने सीताजी जिस दिशा में हैं, उस दिशा में प्रणाम करके उनके द्वारा प्राप्त मुद्रिका रामचन्द्रजी के हाथ सौंप दी, तब उसने सीताजी के दर्शन का वृतांत यों सुनाया :

"मैं सौ योजन दूरवाले समुद्र को पारकर सीताजी का अन्वेषण करने निकला। वहाँ पर रावण का लंका नगर है। उस लंका में राक्षस नारियों के बीच सीताजी कृश गात्री हो विद्यमान हैं। वे जो यातनाएँ भोग रही हैं, वास्तव में उनके अनुरूप नहीं हैं। मैंने जब उनके दर्शन किये, उस वक़्त वे आत्महत्या करने को निश्चय कर चुकी थीं। मैंने बड़ी मुश्किल से उन्हें विश्वास दिलाया और उनसे वार्तालाप किया। आप लोग जब चित्रकूट पर्वत पर थे, उस समय जो एक कौए का वृत्तांत घटित हुआ था, वह भी उन्होंने प्रमाण स्वरूप सुनाया। उन्होंने बताया कि आप के चूडामणि की रक्षा उन्होंने बड़े ही प्रयास के साथ की है। यह भी मेरे द्वारा कहला भेजा कि वे केवल अब एक महीने तक ही जीवित रह सकती हैं। यह बात आप को तथा राजा सुग्रीव से बताने का मुझे आदेश मिला है। इसलिए आप लोग शीघ्र समुद्र को पार करने का कोई उपाय सोच लीजिए।"

हनुमान के द्वारा प्राप्त चूडामणि को श्रीरामचन्द्रजी वक्ष पर लगाकर फूट-फूटकर रो पड़े। उनके साथ लक्ष्मण भी रो उठे। सजल नेत्रों से रामचन्द्रजी ने सुग्रीव से कहा–"सुग्रीव, इस चूडामणि को देखते ही मेरा कलेजा फटा जा रहा है। इसे महाराजा जनक ने सीता को प्रदान किया था। विवाह के समय सीता ने इसे अपने सिर पर धारण किया था। इसे देखने पर मुझे लगता है कि मैं राजा जनक तथा महाराजा दशरथ के दर्शन कर रहा हूँ। साथ ही मैं सीताजी को देख रहा हूँ।"

या स्वसद्मनि पद्मेपि संध्यावधि विजृंभते
इंदिरा मंदिरेन्येषाम् कथम् तिष्टति सा चिरम्? ॥ १ ॥

[अपने निजी निवास कमल में से संध्या के होते ही चली जानेवाली लक्ष्मी अन्यों के घरों में कैसे रह सकेंगी?]

भीता लक्ष्मीः कुरंगीव दूरम् दूरम् पलायते
गुणिनम् जन मालोक्य निजबंधन शंकया ॥ २ ॥

[गुण का अर्थ रस्सा भी होता है। गुणवान अपने को बन्दी बनायेंगे, इस विचार से डरकर लक्ष्मी उनके यहाँ से हिरण की भाँति भाग जाती हैं।]

"शूरम् त्यजामि वैधव्यात्, उदार मवमाननात्,
सापत्न्यात् पंडित मपि, तस्मात् कृपण माश्रये ॥ ३ ॥

[लक्ष्मी यों सोचती हैं: 'शूर के आश्रय में जाने पर वैधव्य प्राप्त हो सकता है, उदार व्यक्ति के आश्रय में जाने पर वह किसी को दान कर सकता है। पंडित के आश्रय में जाने पर मुझे सौतेला झगड़ा करना पड़ता है, इसलिए मैं लोभी के आश्रय में जाऊँगी।']

गोभिः क्रीडितवान् कृष्ण इति, गोसमबुद्धिभिः
क्रीड त्यद्यापि सा लक्ष्मी रहो देवी पतिव्रता ॥ ४ ॥

[लक्ष्मी यह सोचकर पशु तुल्य व्यक्तियों के साथ विचरण करती हैं कि उनके पति कृष्ण ने गायों के साथ जो विचरण किया है। वाह! वह कैसी पतिव्रता है!]

लक्ष्मी की निंदा

Photo by S. B. Takalkar

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

कैसे जाऊँ मैं बाजार ?

प्रेषक :
ज्योतिर्मय आर्य

Photo by Bal. Pawaskar

११२१ ए, कन्सट्रक्शन
कालॉनी, बिलासपुर

बाहर खड़ा है पहरेदार!

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २०)

★ परिचयोक्तियाँ मार्च १० तक प्राप्त होनी चाहिए। सिर्फ़ कार्ड पर ही लिख भेजें।

★ परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबंधित हों, पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ मई के अंक में प्रकाशित की जायेंगी !

चन्दामामा

इस अंक की कथा-कहानियाँ-हास्य-व्यंग्य

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 2 & 3, Arcot Road, Madras 600 026 : Controlling Editor : NAGI REDDI

Statement about ownership of CHANDAMAMA (Hindi)
Rule 8 (Form VI), Newspapers (Central) Rules, 1956

1.	*Place of Publication*	...	'CHANDAMAMA BUILDINGS' 2 & 3, Arcot Road Vadapalani, Madras-600 026
2.	*Periodicity of Publication*	...	MONTHLY 1st of each calendar month
3.	*Printer's Name*	...	B. V. REDDI
	Nationality	...	INDIAN
	Address	...	Prasad Process Limited 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
4.	*Publisher's Name*	...	B. VISWANATHA REDDI
	Nationality	...	INDIAN
	Address	...	Chandamama Publications 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
5.	*Editor's Name*	...	NAGI REDDI
	Nationality	...	INDIAN
	Address	...	'Chandamama Buildings' 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
6.	*Name & Address of individuals who own the paper*	...	CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND Beneficieries; 1. B. V. HARISH 2. B. V. NARESH 3. B. V. L. ARATI 4. B. L. NIRUPAMA 5. B. V. SANJAY 6. B. V. SHARATH 7. B. L. SUNANDA 8. B. N. RAJESH 9. B. ARCHANA–all minors by Trustee, M. UTTAMA REDDI, 9/3, V.O.C. Street, Madras 600 024

I, B. Viswanatha Reddi, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

1st *March* 1976

B. VISWANATHA REDDI
Signature of the Publisher

सफलता के दस वर्ष

कृषि

इस दशक के दौरान विकसित नई कृषि नीति के कारण हरी क्रान्ति शुरू हुई है। प्रमुख सिंचाई परियोजनाओं के समीप शुरू किए गए कमांड एरिया कार्यक्रमों से सिंचाई सुविधाओं का विस्तार हुआ है।

उद्योग

लाइसेंस देने की कार्यविधि उदार और सरल बना दी गई है।
अनेक क्षेत्रों में हम आत्म निर्भर हो गए हैं।
कच्चा माल अब आसानी से मिल जाता है।
छोटे उद्योगों को अधिक बढ़ावा दिया गया है।

संचार

रेल और सड़क परिवहन में सुधार हुआ है।
अधिक सड़कें बनी हैं और उनमें सुधार हुआ है।
डाक - तार सुविधाओं का विस्तार किया गया है।
टेलीफोनों की संख्या कई गुनी हो गई है।

समाज सेवाएं

चिकित्सा और स्वास्थ्य की मिलीजुली सेवाएं शुरू की गई हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार पर विशेष जोर दिया गया है।
डाक्टरों और नर्सों की संख्या बढ़ी है और अब अस्पतालों में मरीजों के लिए अधिक शय्याएं हैं।
अनेक राज्यों में हायर सेकंडरी स्तर तक शिक्षा निःशुल्क कर दी गई है।

महिलाओं और युवकों के कल्याण के लिए विशेष कार्यक्रम हाथ में लिए गए हैं।

बुनियादी आधार मजबूत और अर्थ-व्यवस्था को स्थिर कर दिया गया है.

यह अवधि सफलताओं से भरी पूरी रही है

चन्दामामा-कैमल रंग प्रतियोगिता

निःशुल्क प्रवेश

इनाम जीतिए

कैमल–पहला इनाम १५ रु.
कैमल–दूसरा इनाम १० रु.
कैमल–तीसरा इनाम ५ रु.
कैमल–आश्वासन इनाम ५
कैमल–सर्टिफिकेट १०

केवल १२ वर्ष तक के विद्यार्थी प्रतियोगितामें शामील हो सकते हैं। उपर दिये गये चित्रमें अपने मनचाहें कैमल रंग भर दिजिए। अपने रंगीन प्रवेश-पत्र नीचे दिये गए पते पर भेजिए चंदामामा, डाल्टन एजन्सीस्, चंदामामा बिल्डिंग, वडापालनी, मद्रास-६०० ०२६.

परिणाम का निर्णय अन्तिम निर्णय होगा। और कोई भी पत्रव्यवहार, नहीं किया जाएगा।

नाम ....

उम्र ....

पता ....

चित्र भेजने की अंतिम तारीख: २०–३–१९७६

CONTEST NO.1

Photo by: **Smt. I. UMA RANI**

ELEPHANT GOD

'मित्र-भेद